सरस्वती-सिरीज़ नं० ६२

जीवन शक्ति का विकास

चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिका-प्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित ज्ञानेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ "अश्क़", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

विज्ञान

जीवनशक्ति का विकास

विना औषध-प्रयोग के स्वस्थ रहने के उपाय

चन्द्रशेखर शास्त्री

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad.

प्रथम अध्याय

जीवनशक्ति की परिभाषा

मनुष्य-जीवन की सब से बड़ी आकांक्षा है बलवान् होना। सहन-शक्ति तथा अधिक समय तक जीवित रहने की योग्यता का नाम ही जीवनशक्ति है। उस शक्ति से मनुष्य के ज्ञानकेन्द्र और अंगोपांग सभी अधिक बलवान् हो जाते हैं। यदि किसी के शरीर में एक मनुष्य के योग्य कम से कम औसत बल न हो और उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ एक दूसरी की संतोषजनक रूप से सहायता करती हुई कार्य न करती हों तो यह कहा जा सकता है कि उस मनुष्य में जीवनशक्ति नहीं है। जीवनशक्ति-युक्त होने का अर्थ है—शक्ति तथा सामर्थ्य युक्त होना, शरीर में स्फूर्तिदायक उस गुण का होना, जिसको देखकर दूसरों को ईर्ष्या हो। इस प्रकार की जीवनशक्ति युक्त व्यक्ति के विषय में यह कहा जा सकता है कि 'वह व्यक्ति जीवन के सभी कार्यों में अत्यन्त स्फूर्तिमय क्रियाएँ किया करता है।' वास्तव में जीवनशक्ति को जीवन, शक्ति अथवा सामर्थ्य किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाय, वह अपने सामान्य रूपों में सभी के लिए आकर्षक है।

वास्तव में जीवनशक्ति-युक्त व्यक्ति को ही यथार्थ अर्थ में जीवित कहा जा सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि जीवनशक्ति-युक्त व्यक्ति के प्रत्येक अंग में जीवन की शक्तियाँ शक्ति, स्फूर्ति तथा जीवनोपयोगी अन्य गुणों को भर देती है। ऐसा व्यक्ति स्वभावतः ही उत्साही होता है। उसमें प्रायः उच्च अभिलाषाएँ हुआ करती हैं, इसी कारण ऐसे व्यक्ति को अपने कार्य में उल्लेख-

नीय सफलता मिला करती है। ऐसे व्यक्ति को अपने जीवन में बड़े-बड़े लाभ हुआ करते हैं।

संसार में सफलता से बड़ी कोई चीज़ नहीं है। सफलता प्राप्त करने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति को होती है। बच्चे को आरंभिक जीवन में इसी लिए शिक्षा दी जाती है कि वह अपने भावी जीवन में सफलता प्राप्त कर सके। किन्तु यदि किसी बच्चे में जीवनशक्ति का अभाव होगा तो संभवत: वह अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित रहकर अपने भावी जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। तथ्य यह है कि जिस व्यक्ति में जीवनशक्ति नहीं होती, उसमें किसी प्रकार की बुद्धि भी नहीं होती। शरीर में जीवन-शक्ति के पूर्णतया विकसित होने पर मन में जो-जो मनोभाव तथा विचार उत्पन्न होते हैं वह निश्चय ही उस शक्ति के अभाव में उत्पन्न होनेवाले विचारों से बिलकुल भिन्न होते हैं। अनेक व्यक्तियों का विकास अधिक अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी नहीं होता। उनकी शारीरिक दशा तथा शक्ति दोनों ही अविकसित रह जाती हैं। शारीरिक विकास की इस त्रुटि को ही जीवनशक्ति का अधकचरापन अथवा अधूरापन समझना चाहिए। इसको दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि उसमें पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। यद्यपि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के इस प्रकार अपूर्ण रहने की यह बात बड़ी विचित्र जान पड़ती है, किन्तु निष्पक्षता से तर्क करने पर इसकी यथार्थता को प्रमाणित किया जा सकता है। तथ्य यह है कि जीवन की सफलता मुख्य रूप से उन बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयत्नों पर निर्भर करती है, जो शारीरिक अंगों के अधिक से अधिक विकास के लिए प्रतिदिन किये जाते हैं।

सारांश यह है कि यदि हम जीवन के सबसे अधिक आनन्द-दायक भोग-उपभोगों को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारा प्राथमिक कर्तव्य यह है कि हम बलवान् और उत्तम मनुष्य अथवा स्वस्थ

और पूर्ण स्त्री बनें। अनेक व्यक्ति अर्द्धजीवित रहते हुए ही जीवन के दिन बिता देते हैं। ऐसे व्यक्ति शारीरिक त्रुटियों के प्रायः शिकार बने रहते हैं। उनमें शारीरिक विकास के साथ होनेवाली शक्ति का सदा ही अभाव बना रहता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक शक्ति के नियमित रूप से उपयोग में आते रहने से उनको बड़ी भारी थकावट भी चढ़ जाती है, शरीर के सभी विभिन्न अङ्गों के पूर्ण होने पर वह वास्तव में अत्यन्त आश्चर्यजनक बन जाता है। शरीर में जीवन-शक्ति के अधिक होने से नई-नई कल्पनाएँ सूझती रहती हैं, साहस और योग्यता बढ़ती है, हृदय में जीवन की नई संभावनाओं का संचार होता है और उसमें महत्त्वाकांक्षाओं की आग भड़क जाती है। ऐसे व्यक्ति के लिए दैनिक कर्तव्यों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य भी क्रीड़ामात्र ही हो जाते हैं। अकर्मण्यता तो ऐसे व्यक्ति के लिए असंभव ही हैं। वह कर्तव्य-पालन में दिन भर उद्योग करता हुआ अनिवार्य रूप से प्रतिदिन उन्नति करता रहता है। इस प्रकार का मनुष्य छोटे से बड़ा होता है, उन्नति करता है। और फिर उच्च आसन को प्राप्त करता है, वह निश्चय से ही संसार के ऊपर शासन करता है।

क्या स्नायुओं में स्पन्दन करनेवाली इस प्रकार की जीवनशक्ति को बढ़ाया जा सकता है? क्या उत्साहहीन और निर्बल इन्द्रियों वाला भी इन शक्तियों को प्राप्त कर सकता है? यदि कोई व्यक्ति अभी तक उत्तम महिला अथवा पूर्ण मनुष्य नहीं बन सका है तो क्या वह भविष्य में इस असाधारण गुण को प्राप्त कर सकता है?

इसमें कोई संदेह नहीं कि आवश्यक उद्योग करने से शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों में बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता है। स्पन्दन करनेवाली इस शक्ति को अपनी प्रत्येक नाड़ी में गति करते हुए और आत्मा में शक्ति का संचार करते हुए स्वयं भी अनुभव किया जा सकता है। यदि आपमें उक्त शक्ति का अभाव है तो आप बुद्धिमत्ता-

पूर्ण ढङ्ग से काम में जुट जायँ और इस बात का अनुभव करते रहें कि इस प्रकार की अलौकिक शक्ति उच्च कोटि की शारीरिक योग्यता से ही प्राप्त होती है। शरीर का बलवान् होना अत्यन्त आवश्यक है। अत्यन्त अधिक बल प्राप्त करने की ही आवश्यकता नहीं है, आप अपने को जितना ही अधिक बलवान् अनुभव करते जायँगे आपको अपने ईप्सित कार्य में उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त होती जावेगी। सभी सफल व्यक्ति अत्यन्त उद्योगशील रहे हैं और होते हैं। उनके कार्य जीवनशक्ति तथा स्नायविक सामर्थ्य के उस रूप को प्रकट करत हैं जो उसी प्रकार कभी नहीं दबाई जा सकती, जिस प्रकार एंजिन की शक्ति को एक बार खोल देने से नहीं दबाया जा सकता। सफलता शक्ति के प्रभावपूर्ण एवं कार्यकारी गुण के कारण ही मिला करती है। यह सत्य है कि सफलता प्राप्त करने के लिए केवल शारीरिक योग्यता और शक्ति ही पर्याप्त न होकर उसमें अपने इष्ट कार्य को पूर्ण करने की योग्यता भी होनी चाहिए। वास्तव में इस योग्यता और जीवनशक्ति के बिना कोई कार्य भी पूर्ण नहीं हो सकता।

ज़िन्दादिली अथवा जीवनस्फूर्ति

अब केवल ज़िंदादिली (जीवनस्फूर्ति) नाम के गुण को ही ले लीजिए। यह गुण भी ईश्वर-प्रदत्त ही होता है। जिसमें यह गुण होता है वह प्राय: दूसरों की ईर्ष्या का विषय बन जाता है। किसी व्यक्ति की आकृति चाहे जितनी बेडौल क्यों न हो—भले ही वह भद्दी हो—किन्तु यदि उसमें मुस्कराहट, ज़िन्दादिली और बुद्धिमत्तापूर्ण व्यक्तित्व होता है तो उसकी ओर सभी को आकर्षित होना पड़ता है। दूसरी ओर कोई व्यक्ति अत्यन्त सुन्दर होने पर भी—यदि ज़िन्दादिल नहीं है तो उसको 'शुष्क' और व्यर्थ समझा जाता है। ऐसे व्यक्तियों को जीवित भाषा में मृतक कहा जाता है। यह कहा जा सकता है कि आकर्षण और सभी आकर्षक गुणों

का जीवन की शक्तियों के उच्चतम विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज़िन्दादिली के बिना तो व्यक्तित्व कुछ रहता ही नहीं।

अनेक व्यक्तियों का जीवन सारहीन होता है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि उनका निज का कुछ अस्तित्व ही नहीं होता। उन्होंने कभी भी किसी आनन्ददायक क्षण का अनुभव नहीं किया होता। न कभी वह लानत-मलामत के अत्यधिक कष्टों को ही भोगे होते हैं। यह स्मरण रखने की बात है कि जिसमें अधिक आनन्द लेने की शक्ति होती है उसी में सहन करने की शक्ति भी होती है, यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि आनन्द लेने और कष्ट सहन करने जैसे दो विरोधी गुणों की योग्यता ही मनुष्य के पूर्ण विकास को प्रकट करती है, ठण्डे मिज़ाज वाले मनुष्य के पूर्ण चित्र के लिए हम एक सुअर का सुविधापूर्वक अध्ययन कर सकते हैं; तो भी अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनमें जीवन की शक्तियाँ इस निर्बल प्राणी के जितनी भी विकसित नहीं हुई होतीं।

तब फिर जीवित, जीवनशक्ति-युक्त और ज़िंदादिल ही क्यों न बना जावे? सावधान, तेज़, उद्योगी, उत्साही और महत्त्वाकांक्षी क्यों न बना जावे? उन स्फूर्तिमय लोकोत्तर शक्तियों की पूर्णता प्रगट करती है कि उक्त व्यक्ति का शारीरिक विकास प्राय: पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुका है। इस प्रकार की जीवनशक्तिवाले व्यक्तियों के लिये उनके जीवन में उन्नति के असंख्य अवसर प्राप्त हुआ करते हैं।

जीवनशक्ति को प्राप्त किया जा सकता है—

किन्तु जिन व्यक्तियों में इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षाएँ तथा उच्च अभिलाषाएँ कभी उत्पन्न नहीं हुईं, जिनमें इन शक्तियों का एकदम अभाव है और जो इस प्रकार के आनन्द को जानते भी नहीं—वे यह पूछ सकते हैं कि क्या इन अमूल्य शक्तियों का विकास किया जा सकता है? क्या जीवनशक्ति की ये प्रभावशाली शक्तियाँ कुछ इने गिने व्यक्तियों के लिए ही होती हैं, अथवा उनको

कोई भो व्यक्ति प्राप्त कर सकता है? दूसरे शब्दों में, क्या उन शक्तियों को उत्पन्न अथवा विकसित किया जा सकता है? किन्तु उत्तर इन सबका विध्यात्मक ही होगा। इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं। शारीरिक शक्ति के विकास की भी सोमा होती है, किन्तु स्वस्थ तो अधिकांश व्यक्ति हो ही जाते हैं, जब तक जीवन है तब तक तो कम से कम साधारण स्वास्थ्य लाभ करने योग्य पर्याप्त जोवनशक्ति का होना आवश्यक ही है। वास्तव में किसी ठोक मशीन को चलाने में जितनी शक्ति लगती है, बिगड़ी हुई को चलाने में उससे कहीं अधिक शक्ति लगती है। यही बात शरीर और उसके अङ्गोपांङ्गों के विषय में भी कही जा सकती है। अतएव यदि किसी व्यक्ति में जीवित रहने योग्य पर्याप्त जीवनशक्ति है तो वह रोगी होने पर भी प्रकृति के कार्यों का अनुसरण करने से निश्चय से स्वस्थ हो जावेगा। इस प्रकार के स्वास्थ्य से उसके शरीर और मन को इतना अधिक लाभ होगा कि उसका वर्णन नहीं किया सकता।

इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य ही पाठकों को अधिक से अधिक जीवनशक्ति और स्वास्थ्य की प्राप्ति में आनेवाली समस्याओं को सुलझाने में सहायता देना है। इस पुस्तक की शिक्षाओं के अनुसार कार्य करने, चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid Gland) के व्यायामों को ठीक-ठीक करने से, मेरुदंड को सीधा तथा दृढ़ करने, आहार-नलिका को ठीक करने तथा इस पुस्तक की दूसरी विधियों का अनुसरण करने से पाठकों को विश्वास हो जायगा कि जीवनशक्ति को प्राप्त करना वास्तव में अपूर्व लाभ है। मनुष्य को केवल जीवित रहने मात्र से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए। यदि जीवन किसी योग्य है तो उसका शब्द के प्रत्येक अर्थ में उपयोग करना चाहिए। अपने शारीरिक गुणों का निर्माण तो मनुष्य का प्राथमिक कर्तव्य होना चाहिए।

द्वितीय अध्याय

क्रियात्मक शक्ति और उसका रहस्य

जिस शक्ति के कारण शरीर ठीक-ठीक कार्य करने को समर्थ होता है उसे जीवन शक्ति कहते हैं। जिस समय शरीर के सब अंग अपने-अपने कर्तव्य का संतोषजनक रूप से पालन करते हैं तो यह विश्वास किया जाता है कि शरीर में पर्याप्त जीवनशक्ति है, अतएव यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंगों का ठीक-ठीक कार्य करना ही शक्ति का रहस्य है।

पाचन-शक्ति

अंगों के कार्यों में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य पेट का है। रक्त निर्माणविधि का आरंभ यहीं से होता है। मनुष्य स्वयं भी रक्तपुंज रूप ही है। अतएव इस कार्य का महत्त्व शरीर में सबसे अधिक है। यदि पाचनकार्य ठीक-ठीक होता रहे तथा जीवन, स्वास्थ्य और बल बढ़ानेवाले तत्त्वों में पर्याप्त रक्त पहुँचता रहे तो कहना चाहिए कि पेट का कार्य ठीक ठीक हो रहा है। अतएव जीवनशक्ति के निर्माण में इस अंग का बलवान् होना अत्यन्त आवश्यक है।

इस रक्त-निर्माण के कार्य को पेट के पश्चात् छोटी आँत करती रहती है, छोटी आँत में ऐसा बहुत सा पौष्टिक तत्त्व एकत्र रहता है, जो जीवन के लिए आवश्यक होता है। रक्त को इसी स्थान से पोषण प्राप्त होता है। और यहीं से वह पोषक तत्त्व लेकर फुफ्फुस, हृदय तथा सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाता है। यदि किसी व्यक्ति की आँतें ठीक कार्य न करें तो उसमें उच्च कोटि की जीवन-शक्ति नहीं हो सकती। शरीर की सम्पूर्ण पाचन-प्रणाली को सुगमता से समझने के लिए उसकी उपमा शक्ति उत्पन्न करनेवाले उस ज्वलनयंत्र से दी जा सकती है, जिससे एंजिन अपना कार्य करता है।

हृदय

पाचनक्रिया के पश्चात् हृदय का कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह समझा जाता है कि शरीर में सब से अधिक जीवन-शक्ति इसी अंग में होती है। वास्तव में उस अंग को जीवन का केन्द्र समझा जाता है। यद्यपि जीवन का वास्तविक केन्द्र मस्तिष्क और नाड़ीचक्र को समझा जाता है, किन्तु पोथियों की आश्चर्य-जनक पिचकारी होने के कारण हृदय की उपस्थिति सारे शरीर के लिये अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त उसमें जीवन शक्ति भी अत्यधिक होती है। अतएव संसार सब से अधिक महत्त्वपूर्ण अंग उसी को समझता है। यदि हृदय अपने कार्य को कुछ क्षणों के लिए भी बन्द कर दे तो जीवन उसी समय समाप्त होकर शरीर निर्जीव हो जावे। अतएव बलवान् पेट की अपेक्षा बलवान् हृदय कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु यहाँ यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि हृदय की शक्ति भी बहुत कुछ बलवान् पेट के सहयोग पर अथवा कम से कम भोजन के ठीक-ठीक पचने पर ही निर्भर है; क्योंकि हृदय की पेशियाँ और तन्तु भी—शरीर के अन्य अंगों के समान रक्त से ही पलते हैं, रक्त के जीवनदायक और जीवनधारक गुण भोजन पर निर्भर करते हैं। भोजन पर प्रथम पेट में रासायनिक क्रिया होती है, फिर शरीर के सेल उसको शरीर के सब भागों के उपयोग योग्य बना देते हैं। हृदय वास्तव में एक आश्चर्यजनक अंग है। यह ऐसी पेशियों का बना होता है, जो कभी आराम नहीं करतीं, यह जन्म भर रात-दिन बराबर काम करता रहता है।

फुफ्फुस

जीवन को पुष्ट करने तथा स्वास्थ्य को उत्तम करने में फुफ्फुसों के कार्य को भी छोटा नहीं समझा जा सकता। फुफ्फुसों के कार्य का शरीर के प्रत्येक दूसरे भाग पर तात्कालिक तथा जीवनशक्ति-दायक प्रभाव पड़ता है। फुफ्फुसों के द्वारा ही हम उस ओषजन

(आक्सीजन) को ग्रहण करते हैं, जिसके बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। फुफ्फुसों के द्वारा ही शरीर में से कारबोनिक ऐसिड गैस निकलता है। यदि शरीर में से कारबोनिक ऐसिड गैस निरंतर और ठीक-ठीक न निकलता रहे तो हमारे तन्तु घुट जावें और इस प्रकार विषाक्त हो जावें कि सभी सेलों का कार्य और शरीर-कार्य अचानक बन्द हो जावे। यदि फुफ्फुस सब प्रकार से ठीक और स्वस्थ हों तो उनमें ओषजन ख़ूब आता है और उनमें से कारबोनिक ऐसिड गैस ख़ूब निकलता है। इस कारबोनिक ऐसिड गैस को प्राणिशरीर-रूपी एञ्जिन का धुआँ कह सकते हैं। शरीर के अनेक कार्यों में से श्वास एक ऐसा कार्य है, जिसका सदा होते रहना आवश्यक है। श्वास का कार्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि जीवन-शक्ति के निर्माण में इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

गुर्दे

शरीर की गन्दगी को निकाल कर उसको स्वच्छ करने के कार्य में फुफ्फुसों के अतिरिक्त गुर्दों (वृक्क) का भी स्थान है। गुर्दे एक अन्य प्रकार की विषैली गन्दगी को निकालते हैं। जिस प्रकार फुफ्फुसों के अपना कार्य बन्द कर देने का उसी क्षण अत्यन्त भयंकर प्रभाव होता है उसी प्रकार गुर्दों के अपूर्ण कार्य करने का तात्कालिक प्रभाव इतना भयंकर नहीं होता। किन्तु इतना होने पर भी गुर्दों का ठीक कार्य करना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि शरीर के अन्दर से इस प्रकार निकलते रहनेवाले विषों को शरीर में से न निकलने दिया जावे और वह शरीर के अन्दर इकट्ठा हो जावें तो शरीर उनके कारण उसी प्रकार विषाक्त हो जाता है, जिस प्रकार किसी बाहिर के विष से होता है। यदि गुर्दे पर्याप्त कार्य न करें तो वह विष शरीर में ही रह जाता है। उस समय शरीर में ऐसे भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं कि यदि उनकी चिकित्सा न की जावे

तो उसका परिणाम शरीर के ऊपर भयंकर हो। अतएव स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि गुर्दे बलवान् और कार्यशील हों। इतना ही नहीं, वरन् वे अपना कार्य अधिक से अधिक पूर्णता से करें।

चर्म

गुर्दों और फुफ्फुसों के कार्य की अपेक्षा चर्म का मल को निकालने का कार्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। चर्म भी अनेक कार्य करता है। यह हमारी इन्द्रियों में से एक है। स्पर्श-इन्द्रिय का स्थान चक्षु और श्रवणेन्द्रिय से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह शरीर की रक्षा के कार्य के अतिरिक्त उसमें से मल को बाहिर निकालने का कार्य भी करता है। यदि चर्म-छिद्रों को कई घण्टे तक बन्द रखा जावे तो मनुष्य की मृत्यु हो जावे। यह कहा जा सकता है कि वास्तव में हम चर्म के द्वारा श्वास लेते हैं।

मल निकलने के इन सभी कार्यों का महत्त्व इसी बात से प्रकट है कि शरीर में से ये जितने ही अधिक ठीक निकलेंगे जीवनशक्ति उतनी ही अधिक बढ़ेगी। मल शरीर के अन्दर बराबर बनते रहते हैं; इनके लगातार निकलते रहने पर ही शुद्ध रक्त का बनना संभव है। यदि यह मल शरीर में से अल्प मात्रा में निकलें तो रक्त दूषित एवं विषाक्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य, जीवनशक्ति और यहाँ तक कि जीवन भी नष्ट हो जाता है। स्वास्थ्य पूर्ण रूप से शुद्ध रक्त पर ही निर्भर है। रक्त जिस प्रकार पाचनक्रिया द्वारा प्राप्त निर्माण-सामग्री (रस) पर निर्भर है उसी प्रकार मलों के ठीक तौर से बिना रुके हुए निकलने पर भी निर्भर है।

यकृत्

यकृत् (जिगर) शरीर में सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है। यह अनेक कार्य करता है। पाचनक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले पित्त को यही बनाता है। इसके अतिरिक्त यह

आहार को इस प्रकार का बना देता है कि वह शरीर भर के तन्तुओं के काम आ सके। उदाहरणार्थ, तन्तुओं के आहार को ग्रहण करने में सहायता देनेवाले ऐल्बुमेन (Albumen) मिश्रित भोजन में रासायनिक परिवर्तन यकृत् ही करता है। शरीर के अन्दर की शर्करा में अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन करने में भी यकृत् का बड़ा भाग रहता है। इसके अतिरिक्त शरीर के अन्दर टूटे हुए तन्तुओं को बाहिर निकालने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य को भी यकृत् ही करता है। यह उस मृतक पदार्थ को इस प्रकार का बना देता है कि वह वृक्कों (गुर्दों) के द्वारा रक्त में से छन जावे। यदि यकृत अपने कार्य को संतोषजनक रूप से न करे तो पाचनक्रिया और शरीर की कार्यक्षमता दोनों ही उलट जावें तथा शरीर के अन्दर यूरिक ऐसिड के भर जाने से गठिया, नसों का दर्द, रक्त-संचार के दोष तथा दूसरे रोग हो जावें। शरीर साधारणतया तभी स्वस्थ रह सकता है जब यकृत् दूसरे प्रधान अङ्गों के सहयोग से लगातार ठीक काम करता रहे। क्लोमग्रन्थि (Pancreas), तिल्ली, चुल्लिका ग्रन्थि (Thyriod) तथा अन्य अङ्गों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वास्तव में इन सब भिन्न भागों और कार्यों के समूह का नाम ही शरीर है। यदि उन सब में ही कार्यक्षमता और शक्ति न हो और वे एक साथ मिलकर काम न कर सकें तो अन्योन्याश्रित अङ्गों में से एक भी अपना कार्य न कर सके और शरीर रोगी हो जावे। यदि ठीक ठीक तुलना की जावे तो पट्ठों के बल की अपेक्षा आन्तरिक अंगों की शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

अतएव, अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस आन्तरिक कार्य की शक्ति को किस प्रकार बनाया जावे? क्या हमारे अंगों से अधिक सन्तोष-जनक रूप से काम लिया जा सकता है? हम उनसे अधिक उत्तम कार्य किस प्रकार ले सकते हैं?

इस ग्रन्थ के अगले अध्यायों में बतलाया जावेगा कि शरीर के प्रधान-प्रधान अंगों को किस प्रकार अधिक बलिष्ठ बनाया जा सकता है और किस प्रकार उन सबके परिणाम-स्वरूप शरीर की जीवनशक्ति को बढ़ाया जा सकता है। यह सत्य है कि पट्ठों को बाह्य शक्ति की अपेक्षा आन्तरिक शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु तथ्य यह है कि यह दोनों प्रकार की शक्तियाँ एक साथ ही प्राप्त की जा सकती हैं। यह साधारण नियम है कि पट्ठों की शक्ति बढ़ने के साथ ही साथ आन्तरिक शक्ति भी बढ़ती है। व्यायाम के प्रभाव से रक्त शुद्ध होता है, सभी आन्तरिक अङ्गों में फुर्ती आती है, अन्तर्विभाग को शक्ति मिलती है और साथ ही पट्ठे भी पुष्ट हो जाते हैं। पट्ठों के निर्बल हो जाने का अर्थ है अङ्गों का अत्यधिक निर्बल हो जाना, पूर्णतया जीवित रहने और निःसीम जीवन-शक्ति के स्वामित्व का आनन्द लेने के लिए यह आवश्यक है कि पट्ठे और आन्तरिक भाग दोनों ही फुर्ती से काम करें। शरीर के इन सभी कार्यों के विषय में प्राकृतिक आवश्यकताओं अथवा प्राकृतिक नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। क्योंकि केवल इसी प्रकार जीवन और स्वास्थ्य अच्छी दशा में रह सकते हैं।

शरीर एक यन्त्र (मशीन) के समान है। फिर इस मशीन को मजबूत—यथासम्भव अधिक से अधिक पूर्ण क्यों न बनाया जावे ? इसकी पूर्णता में ही सब बातें आ जाती हैं। यदि किसी के पास एक एंजिन, मोटर साइकिल, सीने अथवा छापने की मशीन हो और वह खराब काम करने लगे तो उसको बदल कर नई मशीन लानी पड़ती है। कभी-कभी तो उस पुरानी के स्थान में नई मशीन लाने के लिए बड़ी भारी रक़म खर्च करनी पड़ती है। किन्तु यदि हमारा शरीर अपूर्ण, निर्बल और मैला हो जावे तथा उसके ऊपर शरीर की जीर्णावस्था के कारण व्यर्थ की गन्दगी जमा हो जावे तो भी हम पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं होते। हम प्रति दिन

और प्रति वर्ष उस शरीर से बराबर काम लेते रहते हैं और कभी उसको बदलने की बात नहीं सोचते। किन्तु शरीर के सम्बन्ध में भी क्यों न किसी दूसरी मशीन के ही समान विचार किया जावे। मनुष्य को जीवित रखनेवाला उसका शरीर ही है। यदि यह यंत्र कम काम करने लगे तो एक नया एंजिन, नया छापाखाना अथवा नई सीने की मशीन लेने की अपेक्षा एक अधिक अच्छा शरीर प्राप्त करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। अंतर केवल यह है कि एक उत्तम शरीर-यंत्र को प्राप्त करना मनुष्य की शक्ति में ही है। वह स्वयं अपने शरीर को चाहे जितना उत्तम बना सकता है। मनुष्य अपने शरीर की मरम्मत कर सकता है, उसमें जीवन-शक्ति बढ़ा सकता है, काम करनेवाले अंगों को बलवान् कर सकता है और उसको अधिक पूर्ण तथा योग्य बना सकता है। मनुष्य अपने शरीर को उच्च शक्तिवाली ऐसी मशीन बना सकता है, जो उसके इच्छानुसार किसी कार्य को करने के लिए वास्तव में अमूल्य हो। मनुष्य अपने निर्बल शरीर को बलवान् बनाकर उस अत्यधिक जीवनशक्ति का आनंद ले सकता है जिसके बिना जीवन व्यर्थ हो जाता है।

तृतीय अध्याय

आसन अथवा शरीर की यथार्थ स्थिति

शरीर को ठीक करने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ठीक-ठीक खड़े होना और बैठना है। संसार के प्राणियों में सीधे चलनेवाला प्राणी केवल मनुष्य ही है। केवल वही एक ऐसा प्राणी है, जिसका मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) वृद्धावस्था में आगे को झुक जाता है। मनुष्य के शिर का झुक जाना निराशा का चिह्न है। वृद्धावस्था में

मानसिक निर्बलता के कारण सिर झुक जाया करता है। सिर के झुक जाने से सारे शरीर को हानि पहुँचती है।

मेरुदंड को सीधा रखना

इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि मेरुदंड को सदा सीधा रखा जावे। प्रत्येक मनुष्य को यह उद्योग प्रति दिन करना चाहिए कि उसका मेरुदंड यथासंभव अधिक से अधिक सीधा रहे। कुर्सी पर बैठते हुए भी सीधे ही बैठना चाहिए। उस समय सिर पीछे को तथा ठोड़ी अन्दर को रहनी चाहिए। टहलते समय अथवा खड़े होने पर भी इसी नियम का पालन करना चाहिए। मेरुदंड को जितना ही अधिक सीधा किया जा सकेगा, स्वास्थ्य उतना ही अधिक उत्तम रहेगा। यह अवश्य है कि कभी-कभी इसके लिए पर्याप्त ताने एवं कटाक्ष सहन करने पड़ते हैं।

यह आगे चलकर दिखलाया जावेगा कि कंधों को पीछे करने तथा सीने को आगे करने के लिये कोई असाधारण उद्योग करने की आवश्यकता नहीं है। केवल ठोड़ी (चिबुक) को अन्दर, नीचे अथवा पीछे की ओर रखने का ध्यान रखने मात्र से ही काम पूरा हो जावेगा। सीना और कन्धे स्वाभाविक रूप से स्वयं ठीक हो जावेंगे। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ठोड़ी अन्दर, नीचे और पीछे को रहे, केवल इतने काम से ही सारा कार्य स्वयमेव हो जावेगा, उस समय सीना और कन्धे स्वाभाविक रूप से ही ठीक हो जावेंगे।

यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इस स्थितिका शारीरिक और मानसिक क्रियाओं पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ेगा। मन पर तो इसका असाधारण प्रभाव पड़ता है। इससे तर्कशक्ति तीव्र होती है, मस्तिष्क में से मकड़ी के जाले के समान उलझनें डालने-वाले विचार दूर हो जाते हैं और साहस में पर्याप्त वृद्धि होती है। भयभीत मनुष्य अपने सिर को नीचे लटका लेता है। निर्भय

मनुष्य का सिर सदा ऊँचा रहता है। वह संसार के मुँह की ओर देखता है। यदि कोई निर्भय मनुष्य नीचे को सिर लटकाकर शरीर को कँपाते हुए किसी भयभीत मनुष्य की नक़ल उतारे तो उसको तुरन्त ही पता लग जावेगा कि उस पर उस स्थिति के कारण उत्पन्न हुए भावों का गहरा प्रभाव पड़ रहा है। वह बहुत शीघ्र भयभीत हो उठेगा। मनुष्य-शरीर की स्थिति का उसके मानसिक भावों पर इतना प्रभाव पड़ता है कि आत्म-विश्वास अथवा विश्वासाभाव के प्रश्न को प्रायः सिर को ऊपर अथवा नीचे करके हल किया जा सकता है। सिर के ऊपर रखने से विश्वास केवल प्रकट ही नहीं होता वरन् विकसित भी होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक तथा आचार-निर्माण के ग्रन्थों के लेखक इस विषय को पर्याप्त रूप से समझे हुए नहीं होते। जिस समय आपका साहस छूटता हो उस समय हिम्मत बाँधने का सबसे अच्छा उपाय शरीर को पूर्वोक्त प्रकार से तान लेना है। शरीर को इस प्रकार तानने से आपका मन भी तन जावेगा। इस विषय में उद्योग करके देखना चाहिए।

इस प्रकार मेरुदंड को सीधा रखने का निश्चित शारीरिक परिणाम होता है। मेरुदंड की रचना कुछ इस प्रकार की है कि यदि वह सीधा रहे तो इस केन्द्रीय स्थान से शरीर के सब भागों को जानेवाली महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ अपने कार्य को अधिक पूर्णता से करती हैं। जहाँ कहीं भी इन नाड़ियों पर दबाव पड़ता है, इनके पूर्णतया कार्य करने में बाधा पड़ती है। जिस अङ्ग के कार्य में बाधा पड़ती है वह मंद गति तथा तटस्थता से कार्य करता है। वास्तव में तो अस्थि चिकित्सा-विज्ञान वालों तथा हाथ पैर की चिकित्सा करनेवालों का सारे का सारा विज्ञान ही मेरुदंड के ठीक सीधा रहने तथा उसके दोषों को दूर करने पर निर्भर है।

मेरुदंड के सीधा रहने से शरीर के मुख्य अङ्गों पर बड़ा भारी पौष्टिक प्रभाव पड़ता है। शरीर के सीधा रहने से सीना पूर्ण, गोल और कुछ-कुछ फैल जाता है, जिससे हृदय और फुफ्फुसों को बहुत सा स्थान मिल जाता है। इस क्रिया से इतनी अधिक जीवनशक्ति बढ़ती है कि जितनी सीने को चौड़ा करने वाले आसन से भी नहीं बढ़ती। आमाशय, यकृत्, तिल्ली, क्लोमग्रन्थि (Pancreas) और आँतें आदि सभी अंग भिंच जाते हैं। किन्तु शरीर के सीधा रहने पर यह सब अंग ऊपर को खिंचकर अपनी स्वाभाविक दशा में हो जाते हैं; जिससे ये अंग पहिले से अच्छा काम करते हैं और शरीर में फुर्ती भी अधिक हो जाती है। स्त्रियों के विषय में यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन सब बातों से मेरुदंड के सीधे रहने के महत्त्व का अच्छा पता चलता है।

हानिप्रद आसन

जिस प्रकार हम प्राय: बैठा करते हैं उससे शरीर के स्वास्थ्य को लाभ तो क्या उल्टे हानि पहुँचती है। हम प्रायः आगे को झुककर बैठा करते हैं; मेरुदंड को तो पर्याप्त मात्रा में तिरछा कर लेते हैं; जिससे हमारे कन्धे गोल हो जाया करते हैं। बैठते समय मेरुदंड को यथासंभव अधिक से अधिक सीधा रखना चाहिए। शिर सारे शरीर की स्थिति को निश्चित कर देता है। यदि शिर झुका होता है तो शरीर भी झुक जाता है अथवा यदि शिर सीधा होता है तो शरीर और मेरुदंड भी सीधे ही होते हैं। ठोड़ी को यथासंभव अधिक से अधिक अन्दर, नीचे और पीछे को रखना चाहिए। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि साधारण कुर्सी पर बैठते हुए शरीर को इस प्रकार रखना प्रायः असंभव होता है।

आरामकुर्सी पर ठीक-ठीक बैठने के लिये असाधारण उद्योग करना पड़ता है। इस प्रकार के फर्नीचर के वस्त्रों के समान शरीर

के नाप का बनवाना चाहिए। कुर्सी की पीठ बैठनेवाले की पीठ के ठीक बराबर होनी चाहिए; उसका बैठनेवाले के मेरुदंड के अनुमानित आकार का होना आवश्यक है। यदि कुर्सी की पीठ इस प्रकार की न बनाई जा सके तो उसके कमर के भाग को काट डालना चाहिए। इस प्रकार की नीची कमरवाली कुर्सी पर बिना किसी विशेष असुविधा के ठीक-ठीक सीधा बैठा जा सकेगा।

पृथ्वी पर बैठकर काम करनेवालों को प्रायः कमर झुकाकर काम करने की आदत पड़ जाती है। ऐसे व्यक्ति यदि कुर्सी पर भी बैठते हैं तो प्रायः आगे को झुक जाते हैं, अथवा पीछे को ढुलक पड़ते हैं और अपनी टाँगों को सिकोड़कर कुर्सी पर ही रख लेते हैं। कुर्सी पर बैठने के अभ्यासी भी कुर्सी की रचना ठीक न होने से ठीक-ठीक नहीं बैठ सकते। कुर्सी की पीठ मनुष्य की पीठ के बराबर नहीं होती और न वह कुर्सी के बैठने के स्थान से समकोण पर ही होती है।

प्रायः मनुष्य पीछे को झुकी हुई कुर्सी पर बैठना क्यों पसंद करते हैं? अपने पैरों को किसी छोटी मेज़ पर बिना रखे भी वे पीछे को झुकी हुई कुर्सी पर बैठना अधिक पसंद करते हैं। इस प्रकार की कुर्सी को आराम देनेवाली क्यों समझा जाता है? इस का कारण यह है कि मनुष्य को अपनी पीठ पीछे को करके बैठने में सहारे से आराम मिलता है, इस प्रकार की कुर्सियों पर मनुष्य को अपने बोझ को स्वयं थामे नहीं रखना पड़ता, शरीर का सारा बोझ इन कुर्सियों के पीछे के भाग पर पड़ जाता है। किन्तु वास्तव में इस प्रकार बैठने से भी मेरुदंड सीधा नहीं रहता। इस प्रकार आराम करके भी यथासंभव शीघ्र से शीघ्र मेरुदंड को सीधा कर लेना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

वीर्य और जीवनशक्ति के साधनों को बलिष्ठ करना

वर्तमान युग पगदंडियों का युग है। आज बड़े-बड़े चक्करदार मार्गों को छोड़कर नये-नये सीधे-सीधे मार्ग निकाले जा रहे हैं। विद्या, व्यापार तथा स्वास्थ्य आदि के विषय में भी इसी प्रकार के सुगम और सीधे मार्गों का अन्वेषण किया जा रहा है। आज किसी कार्य के करने के किसी भी चक्करदार साधन को पसंद नहीं किया जाता। यदि आप जीवनशक्ति और उसके सहगामी गुण ज़िंदादिली, शक्ति तथा उत्साह को प्राप्त करना चाहते हैं तो निश्चय ही आप ऐसे मार्ग को जानना चाहेंगे जो निश्चित रूप से कम समय में उद्देश्य की प्राप्ति करा दे।

चुल्लिकाग्रन्थि

वैज्ञानिकों ने शरीरविज्ञान के रहस्यों की खोज करते हुए पता लगाया है कि चुल्लिकाग्रन्थि (Thyroid gland) का कुछ विचित्र प्रकार से वीर्य और पुरुषत्व पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। यह रहस्यपूर्ण ग्रन्थि गर्दन के सामने के उठे हुए भाग और सोने की अस्थि के ठीक बीच में होती है। गले में यह सब ओर को होती है। इसका आकार तितली के पङ्खों के जैसा और चपटा होता है। बीच में यह अत्यन्त पतले टुकड़ों से जुड़ी होती है। इस ग्रन्थि में प्रणाली नहीं होती। इस ग्रन्थि का स्राव पहिले लसीका (Lymph) में मिलकर फिर रक्त में मिल जाता है।

यद्यपि इस छोटे से अङ्ग के कार्यों का अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चला है; किन्तु इसके विषय में यह बात पूर्णतया निश्चित है कि इसका स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके बिना

शरीर का स्वास्थ्यकर विकास नहीं हो सकता। बच्चों में चुल्लिका ग्रन्थि का पूर्ण विकास न होने से एक प्रकार का पागलपन, या शारीरिक विकार हो जाता है और अङ्ग बेडौल हो जाते हैं। बड़ी आयु में भी इसके कारण शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। इस ग्रन्थि के कारण गला तो प्राय: फूल जाता है, कभी-कभी इसके कारण रोग की दशा इतनी भयंकर हो जाती है कि उसमें हृदय की अत्यधिक धड़कन, नाड़ी-विकृति और नेत्र-विकृति तक हो जाती है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि चुल्लिकाग्रन्थि का उस नाइ-ट्रोजन मिश्रित भोजन के स्राव से भी सम्बन्ध है, क्योंकि इस ग्रन्थि के रोगों की दशा में मांस तथा अधिक प्रोटीनवाली वस्तुएँ बड़ी हानि पहुँचाती हैं। यदि किसी कुत्ते की चुल्लिका ग्रन्थि निकलवा दी जाती है तो मांस के भोजन से वह कुछ ही दिनों में मर जाते हुए देखा गया है, किन्तु यदि उसको कम प्रोटीनवाला भोजन दिया जाता है तो वह अधिक दिन तक जी जाता है, चुल्लिका ग्रन्थि के रोगी प्राय: दूध पर अच्छी तरह रह सकते हैं।

इस विषय के कुछ विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि चुल्लिका ग्रन्थि का कार्य प्रोटीनवाले भोजन के बिगड़ने से बने हुए विषैले पदार्थ को नष्ट करना है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह शराब तथा अन्य विषैली औषधियों से भी शरीर की रक्षा करती है। यह भी निश्चय किया गया है कि शरीर में कम आयोडीन वाले भोजन के जाने पर इस ग्रन्थि पर विशेष प्रभाव पड़ता है और उस समय यह स्वयं ही आयोडीन को बनाती है। चिकित्सकों का विश्वास है कि इस ग्रन्थि के रोगों में चुल्लिका सार (Thyroid extract) से बड़ा भारी लाभ होता है। इस यह सार शरीर को वही पदार्थ देता है, जो स्वस्थ दशा में इस ग्रन्थि से मिलता है।

इस छोटे से महत्त्वपूर्ण अङ्ग का कार्य कुछ भी क्यों न हो, यह बात निश्चित है कि यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। पुरुषत्व, शारीरिक और मानसिक शक्ति पर तो इसका असाधारण प्रभाव पड़ता है। इस ग्रन्थि के इतने महत्त्वपूर्ण कार्यों के कारण ही स्वास्थ्यविज्ञान के विद्वानों का ध्यान इसकी ओर विशेष रूप से गया। उन्होंने विचार किया कि कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिए जिससे यह अधिक शक्तिशाली होकर अपने कार्य को अधिक संतोषजनक रीति से सम्पादन कर सके। इसके ऊपर अनेक प्रकार के अभ्यास किये गये, इसके ऊपर अभ्यास करनेवालों में डाक्टर बर्नर मैक.फैडेन (Barnarr Macfadden) सबसे प्रधान थे। जब किसी अङ्ग को विशेष रूप से पुष्ट किया जाता है तो पहिला विचार यह उत्पन्न होता है कि उसमें रक्त का संचार अधिक हो। इस विषय में अनेक अभ्यास किये गये, किन्तु वह सफल प्रमाणित होने की अपेक्षा हानिकर ही सिद्ध हुए।

बर्नर मैक.फैडेन ने बहुत दिनों तक स्वर-व्यायाम भी किया था। स्वर-व्यायाम वह प्रायः आनंद के लिए ही किया करता था। इस योग्यता से सर्वसाधारण में काम लेने का तो उसको कभी ध्यान भी न था। यह अवश्य था कि वाणी के व्यायाम से उसको अपने सार्वजनिक व्याख्यानों में बड़ी भारी सहायता मिली। इस अभ्यास को करते समय उसपर मेरुदंड को सीधा रखने, ठोड़ी को नीचे, अन्दर और पीछे की ओर रखने, कंधों को पीछे रखने और सीने को फैला हुआ रखने के महत्त्व का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। यह देखने में आया कि शरीर की इस प्रकार की स्थिति रखने के लिए विशेष प्रकार का उद्योग करना पड़ा था। अतएव आरंभ में उस मेरुदंड को सीधा रखने के लिए अनेक प्रकार के विशेष व्यायाम किये। इस प्रकार के व्यायामों का अभ्यास

करते समय उसने अपनी जीवनशक्ति के ऊपर विशेष प्रकार के प्रभाव का अनुभव किया। इससे उसकी केवल शारीरिक शक्ति ही नहीं बढ़ी, वरन् मानसिक शक्ति और योग्यता भी ख़ूब बढ़ गई। उसका मस्तिष्क शुद्ध हो गया और वह अपने व्यवसाय की उलझनों को पहिले की अपेक्षा अधिक सुगमता से सुलझाने लगा। अब वह अधिक निश्चय तथा शीघ्रता से किसी भी विषय पर निर्णय दे सकता था। इसके अतिरिक्त शरीर का वज़न भी बढ़ता हुआ दिखलाई दिया। शरीर में केवल चर्बी-वाले तंतु ही नहीं बढ़े, वरन् मांस भी बढ़ा। इस प्रकार की उच्च कोटि की उन्नति को देखकर उसके हृदय में उस उन्नति के कारणों का सावधानी से अध्ययन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इन व्यायामों को करते हुए उसको जो उत्तम फल प्राप्त हुए थे उनमें अधिक उन्नति करने के ध्यान से वह लगातार उपर्युक्त अभ्यास करता ही चला गया। यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि उच्च कोटि की स्फूर्ति और जीवनशक्ति के लिये आवश्यक सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए पीठ में मेरुदंड के ऊपर वाले भाग का पूर्ण विकास होना आवश्यक है। उसको यह भी स्पष्ट हो गया है कि मेरुदंड का उक्त भाग भी तब तक शक्तिशाली नहीं हो सकता, जब तक चुल्लिका ग्रन्थि को असाधारण परिमाण तक बलिष्ठ न कर लिया जावे। इस आधार पर तर्क करते हुए बर्नर मैक.फैडेन ने अपनी विशेष शक्ति के लिए प्रसिद्ध भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणियों के विषय में विचार किया। इन उदाहरणों से उसके निकाले हुए निष्कर्ष की अत्यधिक पुष्टि हुई। साँड़ रूप में छुटे हुए घोड़े की थोड़ी झुकी हुई गर्दन, पालतू बैल की गर्दन के पिछले भाग का अत्यधिक विकास, भैंसे तथा साँड़ का उसी प्रकार का विकास तथा अपनी जीवनशक्ति तथा शक्तिपूर्ण स्फूर्ति के लिए प्रसिद्ध अन्य अनेक प्राणियों के ऊपर विचार करने से उसके विचारों की

अधिकाधिक पुष्टि होती जाती थी। अब उसको यह जान पड़ने लगा कि वह वास्तव में एक नवीन आविष्कार के मार्ग पर है। जब कभी कोई व्यक्ति किसी भयंकर घोड़े के विषय में विचार करता है तो उसकी पीछे को झुकी हुई गर्दन का उसको अवश्य ध्यान आता है। घोड़े की तंग बाग भी, जिससे वह कभी बड़ा सुंदर दिखलाई देता है, इसी आदर्श के आधार पर अवलम्बित है। इससे यह विचार उत्पन्न होता है कि घोड़े की गर्दन को इस प्रकार पीछे को खींचने से ही उसकी इतनी अधिक उन्नति होती है। अतएव यह आवश्यक है कि शरीर की जीवनशक्ति तथा कार्यशक्ति को बढ़ाने के लिए चुल्लिकाग्रन्थि को बलिष्ठ बनाया जावे।

बर्नर मैकफैडेन ने चुल्लिकाग्रन्थि को बलिष्ठ बनाने की अनेक प्रणालियों की वर्षों तक परीक्षा की, अन्त में अनेक वर्षों के अभ्यास के परिणाम-स्वरूप उसने व्यायाम के निम्नलिखित अभ्यासों को इस विषय में पूर्ण रूप से उपयोगी पाया। ये सभी अभ्यास गर्दन को पूर्ण, टेढ़ा और पूर्ण विकसित आकार देने के लिए पूर्णतया कार्यकारी सिद्ध हुए हैं। इनमें लगभग प्रत्येक अभ्यास—जो किसी अंश तक इन पट्ठों को विकसित करता है—चुल्लिका ग्रन्थि को भी बल देता है। उक्त अभ्यास निम्नलिखित हैं—

अभ्यास १—दाहने हाथ की हथेली को पूरी खोलकर गर्दन के नीचे के भाग पर रक्खो, और चुल्लिकाग्रन्थि को ढककर थोड़ा दबाओ। यदि प्रयोक्ता विशेष रूप से शक्तिशाली हो अथवा हो गया हो तो बायें हाथ की सहायता लेकर इस दाबने के वेग को बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास २—ठोड़ी को ख़ूब ऊपर को उठाओ और तब गर्दन के ठीक सामने की पेशी को सीने के ऊपर के भाग के ऊपर से फैलाते हुए बढ़ाओ। इस क्रिया को तब तक करो जब तक आप थक न जाओ।

अभ्यास ३—ठोढ़ी को अंदर को, थोड़ो नीचे को और यथा-संभव अधिक से अधिक पीछे को झुकाओ, यह क्रिया इतनी हलकी है कि इसको टहलते, बैठे, खड़े हुए अथवा किसी मित्र से बातचीत करते हुए भी चाहे जिस वक्त किया जा सकता है। अपने हल्कंपन के कारण इस क्रिया का किसी को भी पता नहीं लग सकता। जिस समय सिर पीछे को किया जावे, अधिक से अधिक परिश्रम करो। इस बात का ध्यान रक्खो कि इस क्रिया को करते समय पेट का फैला रहना अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यास ४—यह अभ्यास तीसरे अभ्यास के ही समान है। इसमें सिर को अन्य दिशाओं में घुमाना पड़ता है। सिर को दाहिने अथवा बायें बार-बार घुमाकर इस क्रिया को भिन्न-भिन्न प्रकार से करना चाहिए। तीसरे और चौथे अभ्यास की क्रियाएँ चुल्लिकाग्रन्थि को अत्यधिक बल देती हैं। इन क्रियाओं को दिन भर में बार-बार करना चाहिए।

अभ्यास ५—ठोढ़ी को वेग से नीचे को लाकर सीने से मिला दो। इस समय पेशियाँ ख़ूब दब जानी चाहिएँ और सिर अधिक से अधिक नीचे को हो जावे। इसी क्रिया को करते समय सिर को दायें और बायें को भी दबाते जाओ।

अभ्यास ६—अपनी ठोड़ी को दाहिनी ओर को ख़ूब आगे निकालो और उससे दाहिने कंधे को अधिक से अधिक छूने का उद्योग करो। इसी क्रिया को बाईं ओर को करके ठोड़ी से बायें कंधे को छूने का उद्योग करो।

इस बीच में यह आवश्यक है कि मेरुदंड बिल्कुल सीधा रहे। प्रतिदिन प्रातःकाल के समय मेरुदंड को सीधा और तना हुआ रखने का अभ्यास करना चाहिए। और शरीर-निर्माण के इस उद्योग में प्रतिदिन अधिकाधिक सफलता प्राप्त करनी चाहिए। प्रातःकाल के समय उठने पर चुल्लिकाग्रन्थि को बल पहुँचाने के लिए इस अध्याय

में दिये हुए कुछ व्यायाम करने चाहिएँ। किन्तु इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि उक्त व्यायाम करते समय इस पुस्तक की एक-एक सूचना का अक्षरशः पालन किया जावे। दिन में जिस समय भी कोई काम न हो, इन अभ्यासों को कभी-कभी करना चाहिए। इससे मेरुदंड ठीक-ठीक उस प्रकार का सीधा हो जावेगा, जैसा होना इन अभ्यासों के लिए आवश्यक है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अभ्यास ठोड़ी को यथासंभव अधिक से अधिक नीचे, अन्दर और पीछे की ओर करना है। इस प्रयोग में गर्दन के पिछले भाग को अधिक से अधिक झुकाने का उद्योग करना चाहिए। गर्दन में इस प्रकार का टेढ़ापन बड़े भारी अभ्यास के बाद आवेगा। इस सब कार्य से शरीर और मन को निश्चित रूप से लाभ होगा। गर्दन में इस प्रकार का टेढ़ापन न होने पर भी लाभ होना निश्चित है। इन क्रियाओं को ठीक-ठीक करते समय सीने को अधिक बाहर निकालने अथवा कंधों को अधिक पीछे करने की कोई आवश्यकता नहीं है। गर्दन को उपर्युक्त प्रकार से ठीक-ठीक कर लेने से ही सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जावेगी। इन क्रियाओं के लिए सीने को उठाकर थोड़ा गोल कर लो और कंधों को पीछे को खींच लो। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इन क्रियाओं को करते समय पेट अधिक से अधिक फैला हुआ रहे। पेट के ऊपर रेखाएँ बिल्कुल न पड़ने पावें। पेट को बढ़ाने का महत्त्व इसलिए विशेष हो जाता है कि इससे चुल्लिकाग्रन्थि को बल पहुँचाने की क्रियाएँ अपना प्रभाव ठीक-ठीक दिखलाती हैं और सभी महत्त्वपूर्ण अङ्ग पुष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त अभ्यासों का महत्त्व इस बात से और भी प्रमाणित हो जाता है कि इनसे मनुष्य के शरीर में स्फूर्ति आती है, उसकी कार्य-शक्ति बढ़ती है, उसकी पुरुषत्व-शक्ति अधिक होती है और साथ

ही उसकी गर्दन का भी असाधारण रूप से विकास होता है। जिस किसी की गर्दन पहिले से ही चौड़ी और पीछे से भरी हुई होती है, उसके जीवनशक्ति की स्फूर्ति उत्पन्न होती है। अतएव यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मेरुदंड के इस भाग को विकसित करने-वाले उपर्युक्त अभ्यासों को करने से जीवनशक्ति अत्यन्त उच्च हो जाती है। संसार के कुछ सबसे अधिक बलवान् व्यक्ति केवल कुश्ती लड़ने का ही काम करते हैं। इस कार्य के करनेवालों की शारीरिक शक्ति अन्य सभी प्रकार के खेल खेलनेवाले व्यक्तियों से अधिक बनी रहती है। कुश्ती लड़नेवाले अपनी ख्याति को बीसियों वर्षों तक—उस अवस्था तक बनाये रखते हैं, जिस अवस्था पर प्रसिद्ध घूँसेबाज़ तथा दौड़नेवाले भी अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। इस बात को सभी जानते हैं कि कुश्ती लड़ने में मेरुदंड के ऊपर के भाग के असाधारण रूप से प्रबल होने की आवश्यकता है। कुछ बलवान् कुश्ती लड़नेवाले ऊपर की पीठ और गर्दन की पेशियों को बुरी तरह से पकड़ा करते हैं। इन सब कारणों से कुश्ती लड़नेवाले बहुत कुछ ब्रह्मचारी साँड़ के जैसे बन जाते हैं, जिससे उनकी शरीर की अपूर्व जीवनशक्ति का पता भले प्रकार चलता है।

इस विषय में यह बात विशेष रूप से स्मरण रखने की है कि उपर्युक्त अभ्यासों में जो क्रियाएँ गर्दन की पेशियों के विकास में सहायता देती हैं, वह चुल्लिकाग्रन्थि की क्रियाओं को भी बल पहुँचाती हैं। चुल्लिका ग्रन्थि को असाधारण रूप से बल पहुँचाये बिना कुश्ती लड़ने की शिक्षा नहीं ली जा सकती। अतएव, इस अध्याय के व्यायामों को करने से वे सभी लाभ होते हैं जो कुश्ती लड़नेवाले बहुत लम्बे चौड़े समय में प्राप्त करते हैं। गर्दन को बैल के समान ही पुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, यह अवश्य है कि गर्दन इतनी पुष्ट आवश्य हो जावे कि वह अर्द्धवृत्ताकार

अवश्य दिखलाई दे, इस प्रकार से जितना ही अधिक विकास किया जावेगा, जीवनशक्ति उतनी ही अधिक बढ़ेगी। जीवनशक्ति के बढ़ने के साथ-साथ हो दूसरे सब प्रकार की—मानसिक और शारीरिक—शक्तियाँ भी बढ़ेंगी।

——

पञ्चम अध्याय

मेरुदंड को सीधा और प्रबल करना

मनुष्य के मेरुदंड का उसके शरीर के साथ वही सम्बन्ध होता है जो एक तने का वृक्ष के साथ होता है। यदि तना मज़बूत होता है तो पूरे का पूरा वृक्ष मज़बूत और शक्तिशाली होता है। यदि मेरुदंड मज़बूत होता है तो सारा शरीर ही बलवान् होता है। अतएव मेरुदंड को अवश्य ही बल पहुँचाते रहना चाहिए।

मेरुदंड का प्रबल होना इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि मेरुदंड हमारी शारीरिक रचना की नींव है, वरन् इसलिए भी है कि मेरुदंड से ही सभी इन्द्रियों और शरीर के सब भागों को जाने वाली नाड़ियाँ निकलती हैं। मेरुदंड से निकलनेवाली यह नाड़ियाँ ही हमारे समस्त शारीरिक तन्तुओं और अङ्गों के कार्यों का शासन करती हैं। यदि मेरुदंड में पर्याप्त शक्ति हो, यदि अस्थियों को रचना ठीक ठीक परिमाण में हुइ हो, यदि मेरुदंड को सभी अस्थियाँ (कशेरुकाएँ) ठीक-ठीक परिमाण में बलवान् हों तो तो यह वास्तव में विश्वास किया जा सकता है कि उस शरीर में जीवनशक्ति पर्याप्त मात्रा में है।

विना मेरुदण्ड और मेरुदण्डवाले प्राणी

वास्तव में मेरुदंड पृथ्वी भर के सभी उच्च कोटि के प्राणियों के केन्द्रीय तथा मौलिक रचना का आधार है। हमारी पृथ्वी के

ऊपर प्राणियों का विकास होते समय प्राणियों के सबसे सरल रूप से दो भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्च कोटि के प्राणियों का विकास हुआ; जिनमें से एक आन्तरिक अस्थिपंजर मेरुदंडवाले प्राणी थे और दूसरे कीड़े मकोड़े, भिनभिनानेवाले कठोर बाह्य त्वचावाले तथा अन्य इस प्रकार के प्राणी थे, जिनका अस्थिपंजर, घोंघे के रूप में बाहिर होता था। उदाहरण के लिए एक छोटे कीड़े की टाँगों में छोटी-छोटी नलियाँ होतीं हैं, जिनके अन्दर पेशियाँ होती हैं। इसके विरुद्ध मेरुदंडवाले प्राणियों के अङ्गों में हड्डी अन्दर होती है और पेशियाँ बाहर होती हैं। बिना मेरुदंडवाले प्राणियों की मुख्य नाड़ी की नली पीछे न होकर सामने अथवा नीचे होती है। इसी प्रकार उनका मस्तिष्क भी प्रायः पेट में होता है। उनमें से टिड्डे जैसे कुछ प्राणी तो पेट में से ही सुनते हैं। किन्तु मेरुदंडवाले सभी प्राणियों की मुख्य नाड़ी वाली नली पीछे मेरुदंड में होती है और उसके ऊपर के भाग में मस्तिष्क होता है। वास्तव में मेरुदंडवाले प्राणी जीवित मेरुदंड ही होते हैं और शरीर के बाक़ी सब भाग उस मेरुदंड में ही लगे होते हैं। उदाहरणार्थ, हाथ-पैर तथा उच्च कोटि के प्राणियों की पसलियाँ तथा अस्थिपंजर के दूसरे भाग के मेरुदंड से या तो जुड़े रहते हैं अथवा उसी से निकलते हैं। मछलियों में यह अङ्ग पंखों (परों) का रूप धारण कर लेते हैं। उच्च कोटि के प्राणियों में यह अङ्ग पैर बन जाते हैं।

हम जानते हैं कि उच्च कोटि के सभी प्राणी मछलियों तथा सरीसृपों से विकसित हुए हैं। इन सभी प्राणियों के मेरुदंड है, जो जैसा आरम्भ में था, बहुत कुछ वैसा ही अब भी है। अथवा यह कहना चाहिए कि मेरुदंड पसलियों की चट्टानोंवाली पहाड़ियों जितनी प्राचीन शारीरिक रचना है। यह समय की परीक्षा में पूरा उतर चुका है, अतएव इसको शरीर में

सबसे अधिक पूर्ण यंत्रीय रचना कहा जा सकता है। अपनी शक्ति, अपने लचकीलेपन तथा केन्द्रीय नाड़ीमण्डल को धारण करनेवाले के रूप में पूर्णतया ठीक होने के कारण मेरुदंड शरीर में संभवतः मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) से अधिक आश्चर्यजनक रचना है। मेरुदंड के अतिरिक्त शरीर के दूसरे अङ्ग और आकार इस समय सुधरकर इतने अधिक बदल गये हैं कि उनको एक साधारण मूल कारणवाले के रूप में कठिनता से पहिचाना जा सकता है। किन्तु मेरुदंड उस प्राचीन काल से ठीक पहिले जैसी दशा में ही चला आता है। यह सत्य है कि पूँछ के झड़ जाने से मेरुदंड भी कई प्रकार से छोटा हो गया है; किन्तु इसका केवल यही अभिप्राय है कि उसका एक भाग मात्र ही झड़ गया है, उसके मौलिक रूप में कोई प्रधान अन्तर नहीं आया।

सीधे खड़े होने की योग्यता की दृष्टि से मनुष्य का मेरुदंड दूसरे प्राणियों के मेरुदंड से बहुत कुछ भिन्न प्रकार का होता है। संसार में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो अपने शरीर को सीधा करके पूर्णतया सीधा खड़ा हो सकता है। यहाँ तक कि बनमानुष भी सीधे खड़े हुए बहुत कुछ झुके हुए होते हैं। प्राणियों में मेरुदंड विकास के आरम्भ में पड़ी हुई दशा में था, किन्तु जब मनुष्य ने उन्नति करते हुए सीधे खड़े होना आरम्भ किया तो उसके मेरुदंड में भी आवश्यक परिवर्तन हुए।

मेरुदंड के ऊपर के भाग की कशेरुकाएँ ऊपर को क्रमशः छोटी होती जाती हैं, अतएव यह भाग प्रायः निर्बल रहता है। अपनी इस निर्बलता के कारण ही मेरुदंड के इस भाग पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए, शरीर को ठीक सीधा रखने और उसकी रक्षा करने के लिए मेरुदंड के इस भाग का अधिक शक्तिशाली होना आवश्यक है। अतएव इस भाग के लिए निर्दिष्ट व्यायाम

अधिक महत्त्वशाली समझे जाते हैं। इस अङ्ग के निम्नलिखित व्यायाम महत्त्वपूर्ण हैं:—

अभ्यास ७—सिर को ख़ूब ऊपर को उठाये हुए बायें को करो। अब दाहिने हाथ की हथेली को सिर की बग़ल में रखकर उससे सिर को दूर ऊपर से बाईं ओर दाहिनी ओर को घूमते समय दबाते जाओ। थोड़ी थकान होने तक इस अभ्यास को किये जाओ। इसके पश्चात् इसी व्यायाम को उलटकर करो। इस बार दाहिने हाथ के स्थान में बायें हाथ से काम हो।

अभ्यास ८—दाहिने हाथ को सिर के पीछे रक्खो। अब सिर को उस दाहिने हाथ से दबाते हुए ख़ूब आगे और पीछे की ओर को ले जाओ। थोड़ा थकने तक इस अभ्यास को किये जाओ। समय-समय पर दाहिने हाथ के स्थान पर बायें हाथ से काम लेकर इस क्रिया को बदलते रहो।

अभ्यास ९—दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में गूँथ-कर उनको सिर के पीछे रक्खो। अब सिर को आगे और पीछे को करते हुए उसको उपर्युक्त प्रकार से दोनों हाथ की अँगुलियों से दबाते जाओ, थक जाने तक इस अभ्यास को करते रहो।

अभ्यास १०—दाहिने हाथ की हथेली को माथे पर रखकर सिर को ख़ूब पीछे को धक्का देते जाओ। धक्का देते समय दाहिने हाथ की कलाई को बायें हाथ से पकड़े रहो। अब दोनों हाथों से गति को ख़ूब वेग से थामे हुए सिर को आगे को लाओ। थकने तक इस अभ्यास को किये जाओ।

अभ्यास ११—बायें हाथ की खुली हथेली को माथे पर रक्खो। माथे को दबाये हुए पीछे से आगे को वेग से लाओ, थक जाने तक इस अभ्यास को करते जाओ। इस क्रिया में बीच-बीच में बायें हाथ के स्थान पर दाहिने हाथ से काम लेते जाओ।

अभ्यास १२--दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में गूथ-कर बायें पैर के पीछे घुटने के ठीक ऊपर रक्खो। अब गति को थामे हुए पैर को वेग से ऊपर को उठाओ। थोड़ा थकने तक इस अभ्यास को किये जाओ। इस क्रिया से नाड़ी-केन्द्रों को बल पहुँचाने के साथ-साथ पीठ के छोटे भाग को भी शक्ति पहुँचती है और उसका विकास होता है। दूसरे पैर से काम लेकर इस अभ्यास को दोहराओ।

अभ्यास १३—दाहिने और बायें हाथ की अँगुलियों को एक साथ मिलाकर दोनों पैरों के पीछे घुटने से थोड़ा ऊपर पहिले अभ्यास के समान रखो। अब उनको वेग से ऊपर को उठाओ, उसको ढीला करके थकान होने और सनसनी होने तक किये जाओ।

मेरुदंड और युवावस्था के सामान्य कूबड़ों को मज़बूत और सीधे रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अवस्था बढ़ने के साथ ही साथ निर्बलता होती जाती है और मेरुदंड के ऊपरी भाग में कूबड़ अधिकाधिक निकलते जाते हैं। ये कूबड़ जितने ही अधिक निकले होते हैं मेरुदंड तथा पीठ के पट्ठों में उतनी ही अधिक निर्बलता आ जाती है। यह कहा जाता है कि मनुष्य की अवस्था अपने मेरुदंड जितनी ही होती है। क्योंकि मेरुदंड की खराबी का अभिप्राय यही है कि कशेरुकाओं के बीच की चक्करदार उपास्थियों में स्थितिस्थापकता अथवा लचकीलेपन और थामे रहने की शक्ति का ह्रास हो गया, मेरुदंड की ख़राबी से यह भी अभिप्राय समझा जाता है कि पीठ के उन पट्ठों और पार्श्विक बन्धनों में निर्बलता आ गई जो मेरुदंड की कशेरुकाओं को यथा-स्थान रखे रहती हैं। यह प्रायः देखने में आता है कि अस्सी अथवा नब्बे वर्ष की अवस्था पर शारीरिक तथा मानसिक रूप से ठीक रहनेवाले फुर्तीले वृद्ध पुरुष केवल इसी कारण बलवान् बने

 तृतीय अध्याय तृतीय अध्याय

[illegible]

जीवनशक्ति पूर्ण अंगों की क्रियाओं पर शासन करती हैं। अधिक होने से उपर्युक्त व्यायामों में इन अंगों में न केवल बढ़ी हुई नाड़ी-शक्ति से ही वरन् पूर्व उल्लिखित उष्ण जलपान-प्रणाली द्वारा अधिक रक्त आने से भी शरीर में बहुत अधिक स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार शरीर में बल पहुँचानेवाली अनेक ऐसी शक्तियाँ एकत्र हो जाती हैं, जो अनेक दशाओं में महत्त्व-पूर्ण परिवर्त्तन करती हैं।

इनमें से प्रत्येक व्यायाम को तब तक करना चाहिए जब तक थकावट अनुभव न होने लगे। थकावट के पश्चात् पूर्णतया विश्राम करके पेट को ख़ूब फैलाकर श्वास लेना चाहिए, इसके पश्चात् अगले व्यायाम के लिए तयार होना चाहिए। उन व्यायामों के साथ साथ अगले अध्याय के अनुसार उष्ण जल-पान करने से किसी प्रकार की हानि का अंदेशा नहीं है, यह जान पड़ता है कि व्यायाम करने से उत्पन्न हुए मल को जल साफ़ करता रहता है।

छठा अध्याय

आहार-नलिका को शुद्ध तथा बलिष्ठ करना

आहार-नलिका का नाम मनुष्य का अग्निकोष उचित ही गया है, मानवयंत्र को चलानेवाली शक्ति इसी में बनती है, अतएव शरीर के इस अंग को शुद्ध रखने के महत्त्व को विशेषरूप से बतलाना बिलकुल अनावश्यक है। लगभग सभी रोग उदर अथवा आहार-नलिका के किसी न किसी भाग में उत्पन्न होते हैं।

त्रुटिपूर्ण पाचन-क्रिया तथा कम चबाये हुए भोजन से बहुत से असाध्य तथा भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक शौचक्रिया

असाधारण स्फूर्ति तथा जीवन-शक्ति के निर्माण की पद्धति जानने के लिए सबसे प्रथम आहार-नलिका की रक्षा करने की विधियों का जानना आवश्यक है। केवल आँतों के ठीक-ठीक कार्य करने का ही यह अर्थ नहीं है कि उदर और आँतें स्वस्थ हैं, अङ्ग ठीक-ठीक स्वस्थ तभी कहला सकते हैं जब वे बिल्कुल खाली और शुद्ध हों। दूसरे शब्दों में आपको यह अनुभव होना चाहिए कि आपका पेट एकदम ख़ाली है। ठीक दस्त होनेवाले बहुत से व्यक्तियों को उस प्रकार का संतोषजनक अनुभव नहीं होता। आँतों के प्रत्येक प्रकार से सन्तोषजनक रीति से खाली हो जाने पर शरीर के ऊपर किसी भी प्रकार का वेग अथवा दबाव देना आवश्यक नहीं है। इस समय बड़ी आँत केवल पूर्णतया ख़ाली हो जाती है और मल पूर्णतया निकल जाता है। किन्हीं को इस प्रकार संतोष-जनक संख्या के दस्त आते हैं। कम से कम एक दस्त तो प्रतिदिन होना ही चाहिए। यदि दो दस्त हों तो और भी अच्छा है किन्तु यदि ठीक हो तो एक भी काफ़ी है।

यह विचार ठीक नहीं है कि प्रतिदिन नियत समय पर ही दस्त आना चाहिए। क्योंकि दस्त आना ठीक-ठीक भूख लगने पर निर्भर है। आपने अनुभव किया होगा कि भोजन के समय आपको सदा भूख नहीं लगती, कभी-कभी तो भोजन बहुत ही कम किया जाता है। ऐसे समय किसी उत्तेजक औषधि से भूख लगाना अथवा बिना भूख के खाना बड़ी भारी ग़लती है। दस्त को स्वाभाविक आवश्यकता के बिना कृत्रिम साधनों से कराना बिना भूख भोजन करने के समान ही हानिप्रद है। स्वाभाविक भूख के कारण पचकर दस्त होना ही वास्तव में लाभप्रद है। अस्वाभाविक दस्त प्रायः

संतोषजनक नहीं होता। यद्यपि दस्तों के नियमित होने पर विशेष रूप से बल दिया जाता है तो भी दस्त का किसी निश्चित समय पर प्रतिदिन होना आवश्यक नहीं है। जब तक मनुष्य की बड़ी आँत प्रतिदिन एक बार पूरी तौर से ख़ाली होती रहेगी, यह विश्वास किया जा सकता है कि तब तक भोजन-नलिका साधारणतया स्वस्थ दशा में है।

तो भी, यदि ठीक समय पर दस्त न आवे और आपको अपना उदर ठीक-ठीक ख़ाली जान पड़े तथा कष्ट-सूचक कोई और चिह्न न हो तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस बात का उल्लेख केवल इसलिए किया गया है कि पाठक प्रतिदिन नियत समय पर ही दस्त होने को स्वास्थ्य का चिह्न न समझें।

यह स्वाभाविक है कि यदि भोजन-नलिका में पर्याप्त समय तक मैला एकत्र होने दिया जावेगा तो बड़ी और छोटी दोनों ही आँतों के सब अङ्गों में सुस्ती आ जावेगी। ऐसी अवस्था में सब प्रकार के विष उत्पन्न होकर रक्त में सम्मिलित हो जावेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि शरीर में सुस्ती आकर क्रमशः निर्बलता आ जावेगी और मनुष्य बीमार हो जावेगा। अतएव इस पुस्तक की अन्य बातों पर ध्यान न देकर भी भोजन-नलिका को शुद्ध रखने में पूर्णतया सतर्क रहना चाहिए।

भोजन-नलिका को स्वस्थ रखने के लिए निश्चित रूप से नियत समय पर दस्त होने के विचार से ही न चिमटे रहना चाहिए; क्योंकि इस विचार के कारण आँतें स्थायी रूप से मंद कार्य करने-वाली अथवा अनियमित हो सकती हैं। नियम के अनुसार आपको प्रतिदिन नियमित दस्त होने की आशा रखनी चाहिए। किन्तु यदि अकस्मात् उक्त क्रिया किसी दिन नहीं भी होती तो उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

विरेचक उपाय

भोजन-नलिका के अत्यन्त अधिक स्वस्थ रहने के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए यहाँ उस महत्त्वपूर्ण अङ्ग के कार्य को नियमित करने के अनेक ढङ्ग दिये गये हैं। उदाहरणार्थ नोचे की आँत को धोने का प्रस्ताव अनेक दशाओं में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। यह प्रक्रिया भोजन-नलिका के नीचे के भाग—बड़ी आँत को साफ़ करती है। इस प्रक्रिया से छोटी आँतों को अपने अन्दर का मैला बड़ी आँत में डालने का अवसर मिलता है। किन्तु तो भी इस सहायता से उस पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। यदि आपका विचार उदर से लगाकर मलद्वार तक की पूरी की पूरी आहार-नलिका के साफ़ करने का हो तो इसके लिए ऐनीमा बड़ा भारी उपयोगी होता है। अनेक उदाहरणों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लघु विरेचक भोजनों को दिया जा सकता है, यद्यपि कभी-कभी इनसे भी सन्तोषजनक परिणाम नहीं होता। अनेक रोगों में रोगियों को लघु विरेचन थोड़े समय के लिए ही आराम देते हैं। उनके प्रभाव के पश्चात् उन रोगियों की आँतों की दशा फिर पहिले के समान हो जाती है। यह स्वाभाविक है कि विरेचक औषधियों का प्रभाव अस्थायी होने के कारण उनसे यथासंभव बचना चाहिए। विरेचक औषधियों का प्रभाव आहार-नलिका की कोमल नाड़ियों तथा उसके कार्य पर बड़ा भयङ्कर पड़ता है। विरेचक औषधियाँ वास्तविक दशा को और भी बुरा बना देती है।

पाचन-क्रिया

यह बात अच्छी तरह स्मरण रखनी चाहिए कि कोष्ठबद्धता (क़ब्ज़ियत) का वास्तविक कारण प्रत्येक दशा में ही भोजन-नलिका की रचना तथा तन्तुओं में जीवनशक्ति-सम्बन्धी स्फूर्ति की त्रुटि होता है। पाचनक्रिया, यद्यपि किसी अंश में रासायनिक प्रक्रिया है, तो भी यह प्रायः करके यांत्रिक कार्य ही है। पाचनक्रिया

के आरम्भ में उदर की पेशियाँ भोजन को चबाती हैं, उनके पश्चात् छोटी आँत के घुमानेवाले पेशी-सूत्र अपना कार्य करते हैं। यदि ये पेशियाँ अपने कार्य में त्रुटि करें, यदि वे ढीली हो जावें, काँच निकल आवे अथवा वे निर्बल पड़ जावें तो वे अपने कार्य को ठीक-ठीक नहीं कर सकतीं। शारीरिक इन्द्रियों के इस महत्त्व-पूर्ण भाग को बलिष्ठ करने का उद्योग करते हुए इस बात को निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि पेशियों के तन्तुओं की शक्ति को बढ़ाना अनिवार्य रूप से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इन अङ्गों के लिए बाह्य पेशियों की शक्ति की अपेक्षा रक्त-निर्माण करने-वाली पेशियों का प्रबल होना अधिक आवश्यक है, अतएव जब शरीर को किसी भी प्रकार से बलवान् बनाया जावेगा तो भोजन-नलिका के कार्यों और मल-निर्यास (Excretions) में अवश्य ही बड़ा भारी लाभदायक परिवर्तन होगा।

आहार-नलिका को बलिष्ठ करना

डाक्टर बरनर मैकफ़ैडेन ने पचीस वर्ष तक समस्त चिकित्सा-प्रणालियों का गम्भीर अध्ययन करके भोजन-नलिका की क्रिया को तेज़ करनेवाले अनेक सिद्धान्तों और प्रयोगों का पता लगाया है। इस अध्याय में भोजन-नलिका के कार्यों को बल पहुँचानेवाली ऐसी नई प्रणाली का वर्णन किया जावेगा, जो अभी तक इस कार्य के लिए असाधारण रूप से मूल्यवान् सिद्ध हुई है। यह प्रणाली तत्सम्बन्धी प्रत्येक अङ्ग पर अपना सीधा प्रभाव इस प्रकार दिखलाती है कि उसके परिणाम को अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक प्रत्येक स्थान में देखा जा सकता है।

आहार-नलिका को बल पहुँचाने की इस प्रक्रिया को कुञ्जर (उष्ण-जल पीने) और नाड़ी-केन्द्र-पौष्टिक-क्रिया कह सकते हैं। इस क्रिया को करने के लिए सबसे अच्छा समय प्रातःकाल का है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस क्रिया को प्रातःकाल के अतिरिक्त

दिन के अन्य किसी भाग में नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस क्रिया को करते समय आमाशय का खाली होना अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रक्रिया के लिए केवल निम्नलिखित वस्तुएँ ही आवश्यक हैं—

एक या दो बोतल उबलता हुआ पानी, थोड़ा सा नमक तथा एक ऐसा बर्तन जिसमें आध सेर से लगाकर सेर भर तक जल आ सके। इस चिकित्सा की दूसरी आवश्यकता वे अभ्यास तथा व्यायाम हैं, जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित व्यायाम भी आवश्यक हैं :—

अभ्यास १४—इस प्रकार सीधे खड़े हो जाओ कि मेरुदंड यथासंभव अधिक से अधिक सीधा और कठोर रहे। फिर अपने बायें पैर को इस प्रकार ऊपर को उठाओ कि तुम्हारा घुटना झुका रहे और तुम्हारी पिंडली पूर्णतया घुटने के नीचे छिपी रहे। हाथों को कोहनी पर मोड़ते हुए पैर को यथासंभव अधिक से अधिक ऊपर को उठाओ। यह व्यायाम भुजदंडों और जंघाओं की पेशियों को विकसित करने के लिए असाधारण रूप से उपयोगी है। इस व्यायाम को तब तक करते रहना चाहिए जब तक शरीर थक न जावे, व्यायाम के समय कभी दाहिने और कभी बायें पैर से काम लेते रहना चाहिए।

अभ्यास १५—सीधे खड़े होकर घुटनों को झुकाते हुए शरीर को नीचा करते हुए एकदम झुका लो। इस अभ्यास को बार बार उठकर थकावट होने तक करते जाओ। यह आवश्यक है कि प्रत्येक अभ्यास के पश्चात् घुटनों को झटका देकर चटखा लिया जाया करे। इस छोटे से अभ्यास को करने से प्रत्येक बार अधिकाधिक बल बढ़ने के साथ साथ रक्तःसंचार भी अधिक होता है।

अभ्यास १६--अपना मुख नीचा किये हुए फ़र्श पर इस प्रकार पट लेट जाओ कि खुली हुई हथेलियाँ सीने के नीचे रहें और कोहनियाँ बाहर को फैली रहें। अब हाथों को सीधा करते हुए

शरीर को ऊपर को उठाओ। यह अभ्यास और अभ्यास १७ सीने को बल पहुँचाने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

अभ्यास १७—किसी सोखचे, मेज़ अथवा चारपाई आदि पर पट लेटकर शरीर को इस प्रकार सीधा करो कि कोहनियाँ करवट में मिली रहें। अब फिर हाथों को सीधा करते हुए शरार को ऊपर को उठाओ।

इन नाड़ी-पुष्टिकर व्यायामों को यथासंभव मकान के बाहर अथवा खुली हुई खिड़की के सामने करना चाहिएँ। शीत ऋतु में अपने शरीर को ठंड न लगने देने योग्य पर्याप्त वस्त्र पहन लेने चाहिएँ। ग्रीष्म ऋतु में वस्त्र कम पहिनने चाहिएँ। यदि आपका चम विशेष रूप से सुस्त हो, अथवा उसमें इस प्रकार का रोग हो जिसमें रूसी अथवा तुर्की स्नान से पसीना जल्दी-जल्दी आ जाता हो, तो इस अभ्यास को करते समय अधिक उष्ण वस्त्र पहिनने चाहिएँ। इस दशा में एक भारी स्वेटर प्रायः लाभप्रद होता है। इन व्यायामों से पसीना ख़ूब आवेगा। पसीना आने का अभिप्राय शरीर में से खुले हुए विषों का निकलना है।

उष्णजल-पान-विधि और उसके व्यायाम

यदि आप व्यायाम के समय सेर भर पानी पी सकें तो बर्तन आध सेर पानी योग्य होना चाहिए। किन्तु यदि आप केवल आध सेर पानी ही पी सकें तो बर्तन पावभर पानी से अधिक का नहीं होना चाहिए।

इन व्यायामों को आरम्भ करने से पूर्व उष्ण जल का एक प्याला पी डालो। प्याले में थोड़ा नमक इसलिए डाल देना चाहिए कि उष्ण जल से स्वाद भद्दा न लगे। जल जितना ही अधिक उष्ण पिया जावे अच्छा है। जल को धीरे धीरे न पीकर एकदम पाना चाहिए। इसके पश्चात् अभ्यास ११, १२ और १४ को करना चाहिए। इन व्यायामों को थोड़ा थकान होने तक करना

चाहिए। इसके पश्चात् उष्ण जल के बचे हुए दूसरे प्याले को पीना चाहिए और व्यायाम करते रहना चाहिए।

उष्ण जल का दूसरा प्याला पीने के पश्चात् अभ्यास १३,७ और ८ को करना चाहिए। इसके पश्चात् आप उष्ण जल का तीसरा प्याला पी सकते हैं। आप अभ्यास १५, १६ और ६ को कर सकते हैं, और आप उष्ण जल का चौथा प्याला पीकर अभ्यास १७, ६ और १० आदि को कर सकते हैं।

उष्ण जल पीने के बीच में इस प्रकार के व्यायाम करने का यह सामान्य नियम है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यही क्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। यह हो सकता है कि किसी व्यक्ति को इस क्रम में परिवर्तन करना पड़े। उदाहरणार्थ, संभव है कि उसको दो अभ्यासों के पश्चात् ही उष्ण जल की आवश्यकता पड़ती रहे।

कभी-कभी होनेवाली भारी कोष्ठवद्धता क़ब्ज़ियत भी इस उष्ण-जल-पान और नाड़ी-पौष्टिक प्रक्रिया से प्रायः शीघ्र दूर हो जाया करती है। यदि शौच जाने की आवश्यकता होती है तो इस अभ्यास को करते समय अथवा अभ्यास करने के बाद शीघ्र ही इसके लिए स्वाभाविक रूप से ही प्रबल इच्छा हुआ करती है। यदि आप यह अनुभव करें कि ऐसी आवश्यकता तो है और शौच होता नहीं है तो आपको विश्वास रखना चाहिए कि यह चिकित्सा तत्संबंधी प्रत्येक अंग में पहिले गति करने की शक्ति भरती है और इच्छा उसके पश्चात् होती है।

अत्यंत ही निर्बल व्यक्ति केवल दो प्याले उष्ण जल तथा अभ्यास ७, ८ और ९ से ही चिकित्सा आरंभ कर सकते हैं। अभ्यास ७, ८ और ६ को किसी तकिये आदि का सहारा लेकर झुके-झुके भी किया जा सकता है।

इस प्रकार एक या दो सप्ताह तक करके उष्ण जल का तीसरा प्याला लिया जा सकता है। इस प्रकार जल के परिमाण, फुर्ती और अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है।

वात रोगों तथा रक्त-विकार के उपचार

जिन व्यक्तियों को वायु रोग, गठिया अथवा नाड़ियों में दर्द आदि हो जाया करता हो, अथवा जिनके रक्त में विष अथवा कोई अन्य अशुद्ध पदार्थ मिला हुआ हो, उनको डिस्टिल्ड वाटर (वाष्पीकरण क्रिया द्वारा बनाया हुआ शुद्ध जल) ही लेना चाहिए। किंतु यदि डिस्टिल्ड वाटर सुगमतापूर्वक न मिल सके तो मामूली औटा हुआ जल भी काम दे जावेगा। यदि जल में धातु संबंधी पदार्थों का प्रभाव आ गया हो तब तो उसको अवश्य ही उबलवा लेना चाहिए; क्योंकि उबालने से उसके सब दोष दूर हो जाते हैं। सारांश यह है कि उष्ण जल सदा ही लाभकारी है।

उष्ण जल के पीने से आमाशय और आँतों को निश्चय बड़ा भारी लाभ होता है। किंतु यदि उसके साथ ही नाड़ी-पुष्टि-कर व्यायाम भी किये जावें तब तो कहीं अधिक लाभ होता है। कोष्ठबद्धता में तो इन व्यायामों और उष्ण-जल-पान से इतना अधिक लाभ होता है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन क्रियाओं से इतने अधिक लाभ होते हैं कि वे दूसरे प्रकार से हो ही नहीं सकते। वास्तव में तो इस विशेष प्रकार की चिकित्सा से अंग के अकड़ जाने, अम्लता और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के बादी के कारण होनेवाले सभी प्रकार के दर्दों को अत्यंत शीघ्रता से लाभ होता है। उष्ण-जल-पान और नाड़ी-केन्द्रों को बल पहुँचाने की यही दोनों क्रियाएँ रक्तशोधक क्रियाएँ हैं। इनसे शरीर की गन्दगी निकलकर वह अत्यन्त शुद्ध और बलिष्ठ हो जाता है।

शरीर-दौर्बल्य का उपचार

जिनके शरीरों में आहार का रस रक्त में नहीं मिलता उनके शरीर का वज़न बढ़ाने की यह प्रक्रिया अच्छी साधन है। यह प्रक्रिया पाचक अंगों पर अपना सीधा प्रभाव डालने के साथ ही शरीर के सभी अंगों को बल पहुँचाती है। केवल उष्णजल ही आमाशय और आँतों को सफा करके उनको खाली कर देता है और शरीर के पाचक रसों को बल पहुँचाता है। शरीर में कम रस बनने के कारण साधारण मान से कम वज़नवालों को इन क्रियाओं को कम से कम कुछ सप्ताह अवश्य करना चाहिए।

यदि आपका शरीर पीला, सुस्त और भारी सा रहता है तो भी आपको इस चिकित्सा से बड़ा भारी लाभ देखने में आवेगा। इस प्रकार के एक निर्जीव और अत्यन्त पीले रोगी को डाक्टर मैक.फैडेन ने एक सप्ताह में ही लाभ पहुँचा दिया था। इस चिकित्सा से केवल उसका रंग ही नहीं बदल गया, वरन् चेहरे की पेशियाँ भी काफी भर गई थीं। जब चेहरे पर ही इस प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं तो फिर इससे होनेवाले आन्तरिक लाभ के तो क्या कहने हैं।

रक्तवेग के रोगों का उपचार

इस प्रक्रिया से शरीर में बलदायक रस पुष्ट होता है, जिससे रक्तावर्त (Blood Circulation) में उन्नति होती है। रक्तावर्त की उन्नति से शरीर के विभिन्न भागों की विभिन्न निर्बल ग्रन्थियाँ ठीक हो जाती हैं और उनकी रचना क्रमशः ठीक हो जाती है। सारांश यह है कि इसमें सारे ही शरीर को बड़ा भारी लाभ पहुँचता है। रक्त का वेग अधिक होनेवाले (High blood pressure) रोग में भी इस प्रक्रिया से असाधारण लाभ होता है। यह अवश्य है कि इस रोग में व्यायाम उतना ही करना चाहिए कि थकावट न आवे। जब रक्त गाढ़ा अथवा

लुआबदार या चिपचिपा हो जाता है तो उष्ण जल के उपयोग से वह पतला हो जाता है, जिससे उस समय वह केशिकाओं में से अधिक सुगमता से गति कर सकता है और उसके परिणाम-स्वरूप रक्त का वेग (Pressure) कम हो जाता है। इस बात को सभी जानते हैं कि रक्त का वेग कम रहने से सहनशक्ति बढ़ती है और स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जब नाड़ी-केन्द्रों को विशेष रूप से बल देनेवाले और मेरुदंड को ठीक तथा प्रबल करनेवाले इन व्यायामों के साथ उष्ण जल का उपयोग किया जावेगा तो रक्त को सभी पेशियों में से जाना पड़ेगा, जिसका साधारण परिणाम यह होगा कि शरीर के सभी भाग शुद्ध हो जावेंगे और साथ ही भोजन नलिका भी स्वच्छ हो जावेगी।

कसरती पहलवान व्यायाम के बाद प्रायः तैल मर्दन अथवा मालिश किया करते हैं। इसका उद्देश्य यही होता है कि रक्तावर्त (Blood Circulation) को बढ़ाया जावे, जिससे पेशियाँ व्यायाम से एकत्र होनेवाले थकायट के विष को ले जावें। यदि उपर्युक्त व्यायामों के साथ बहुत से उष्णजल का उपयोग किया जावेगा तो व्यायाम करने के समय भी इस उद्देश्य की अधिक पूर्ति होगी; क्योंकि पेशियों में से रक्त अधिक उत्तम रूप से शरीर के सब भागों में जाता है। जो व्यक्ति अधिक व्यायाम से अकड़ जाते हैं अथवा किन्हीं अन्य कारणों से जिनकी पेशियाँ दुखने लगतीं हैं उनको इस प्रकार उष्णजल-पान से पर्याप्त लाभ होगा।

थकावट और उसका उपचार

थकावट के वैज्ञानिक विवेचन के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि दिन भर के परिश्रम से धमनियों और शिराओं के अंदर एकत्र वह सामग्री खर्च हो जाती है जो साधारणतः सोते समय उत्पन्न की जाती है। यदि थकावट की परिभाषा यही करनी हो

तो उसको उपर्युक्त व्यायाम तथा उष्णजल-पान से दूर किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति प्रक्रिया के प्रयोग को ठीक जानता हो तो किसी प्रकार के तात्कालिक प्रभाव के लिए इससे अधिक प्रभावशाली दूसरी प्रक्रिया संभव नहीं है। सिर का दर्द तथा पोतों का दर्द भी इस प्रक्रिया से कुछ मिनटों में ही अच्छा होता हुआ देखा गया है। कभी-कभी तो केवल उष्णजल पान से ही बड़ा भारी लाभ होता हुआ देखा गया है। फिर इसके साथ थोड़ा व्यायाम और भी कर लेने से बहुत अधिक लाभ हो जाता है।

शरीर की शुद्धि के तथा रोगनिवृत्ति के लिए उपर्युक्त प्रक्रिया को फिर संक्षेप से दिया जाता है—

इस प्रक्रिया में उष्णजल-पान के साथ ही नाड़ी केन्द्रों को बल पहुँचाने के लिए कुछ विशेष प्रकार की गतियाँ करनी पड़ती हैं।

चिकित्सा के आरम्भ में प्रातःकाल उठते ही पाव भर से लगाकर आध सेर तक उष्ण जल—पिया जाने योग्य अधिक से अधिक उष्ण—पीना चाहिए। इसके पश्चात् पाँच-पाँच दस-दस मिनट के अंतर से उतना ही उष्ण जल तब तक पीते रहना चाहिए जब तक सेर दो सेर उष्ण जल न पचा लिया जावे।

यदि ख़ूब पसीना लाना हो तो बहुत से कपड़े पहिन लेने चाहिए। किन्तु यदि शरीर में कोई रोग न हो और शरीर का केवल वज़न बढ़ाना ही अभीष्ट हो तो पर्याप्त उष्णता उत्पन्न करने योग्य वस्त्र ही पहिनने चाहिएँ; अधिक नहीं।

जब निश्चित रूप से शौच जाने की ही आवश्यकता हो तो इस प्रक्रिया से ही पूरा और संतोषजनक दस्त भी आ जाता है। शरीर को शुद्ध करने की इस प्रक्रिया के परिणाम-स्वरूप मस्तिष्क शुद्ध होता है, शरीर और मन दोनों ही निर्मल हो जाते हैं, और चाहे आँतें तुरंत काम करें या न करें उसका परिणाम बाद में संतोषजनक अवश्य है।

यदि अस्थायी रूप से कोष्ठबद्धता (क़ब्ज़) हो गई हो और तत्काल लाभ कराना हो तो उष्ण जल के प्रत्येक प्याले में चौथाई से लेकर आधा चमचा (चाय का) तक नमक मिला लेना चाहिए। प्रत्येक दशा में इसका परिणाम अत्यन्त शीघ्र देखने में आवेगा। इसी परिणाम को दो सेर से अधिक उष्ण जल को पीने से भी प्राप्त किया जा सकता है। इस दशा में नमक प्रत्येक वार बहुत थोड़ा डाला जावेगा। यदि मनुष्य में सामान्य शक्ति भी होगी तो इस अधिक उष्णजल-पान से कोई हानि न होगी।

यदि कोई व्यक्ति कसरती हो तो उसको शौच जाने से पूर्व सौ दो सौ बार इस प्रकार कूद लेना चाहिए जिस प्रकार रस्सी पर कूदा करते हैं। इस क्रिया से स्वाभाविक इच्छा बढ़ती है और इसका सदा ही सन्तोषजनक परिणाम होता है।

जो व्यक्ति उक्त निश्चित परिमाण में जल न ले सकें तो आरंभ में वे अपनी सामर्थ्य और सुविधा के अनुसार ही लेकर उस परिमाण को प्रतिदिन बढ़ाते रहें।

इस उष्णजल-पान की क्रिया को अनिश्चित समय तक दैनिक नहीं करना चाहिए। जब यह अनुभव होने लगे कि शारीरिक दशा प्रत्येक प्रकार से संतोषजनक हो गई है तो कुछ दिनों में इस प्रक्रिया को बंद कर देना चानिए। इसके पश्चात् आवश्यकता होने पर उसको फिर आरंभ कर देना चाहिए। अच्छा तो यह है कि व्यायाम दैनिक किया जावे और कभी कभी एक या दो गिलास उष्ण जल भी ले लिया जाया करे।

सातवाँ अध्याय

जीवनशक्ति-निर्माण के व्यायाम

अकर्मण्यता का अर्थ ही अस्तित्व का विनाश है। इसी को मृत्यु भी कहते हैं। हमको शारीरिक शक्ति और इन्द्रियाँ एक निश्चित उद्देश्य से दी गई थीं। अतएव उनसे काम न लेने से बड़ा कठोर दंड भोगना पड़ता है। शरीर को निश्चेष्ट बनाने से कदापि स्वास्थ्य बना नहीं रह सकता है। आप असाधारण जीवनशक्तिवाले कुछ ऐसे व्यक्ति भी दिखला सकते हैं, जो ज़ाहिरा कोई व्यायाम नहीं करते। किन्तु यदि उनके स्वभाव का अध्ययन किया जावे तो पता चलेगा कि वह कम से कम किसी प्रकार का पेशियों का कार्य अवश्य करते होंगे, फिर चाहे वह कम से कम परिमाण में टहलना भले ही हो। किसी-किसी में ऐसी असाधारण जीवनशक्ति भी देखने में आती है कि वह साधारण स्वास्थ्य के नियमों को बराबर तोड़ते रहते हैं। किन्तु यदि उनके आरंभिक जीवन का अध्ययन किया जावे तो पता लगेगा कि उन्होंने यौवन के आरंभ में ख़ूब व्यायाम करके अपनी शारीरिक रचना को अत्यन्त पुष्ट कर लिया है। तो भी इन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करने का घातक परिणाम वृद्धावस्था में देखने में आया करता है। मध्य श्रेणीवाले व्यक्तियों की मृत्यु का औसत गत तीस वर्ष में संसार के सभी भागों में अधिक रहा है; और यदि असाधारण जीवनशक्तिवाले व्यक्ति बिना रोगी हुए अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा कर सकते हैं तो पर्याप्त शक्तिवाला वह मनुष्य तो, जो अपनी जीवनशक्ति का निर्माण करने का उपक्रम कर रहा है, निश्चय से ही शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं कर सकता।

शरीर में विष उत्पन्न होने का कारण

पूर्णतया जीवित बने रहने के लिए नियमित रूप से अथवा कभी कभी कुछ व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। यह व्यायाम केवल पट्ठों की शक्ति के लिए ही नहीं किया जाता वरन् स्वास्थ्य और जीवन के लिए किया जाता है। संसार में बहुत से व्यक्ति इस भ्रम में पड़े हुए हैं कि वे बिना व्यायाम के ही जी रहे हैं, किन्तु अस्तित्व रहने का नाम ही जाना नहीं है। जब तक शरीर के भिन्न-भिन्न कार्यों को करनेवाले भिन्न-भिन्न अंग पर्याप्त गतिशील न हों मनुष्य निश्चय से अपने पूर्ण अर्थ में जीवित नहीं कहला सकता। जीवित रहने का वास्तविक अर्थ हो यह है कि उक्त मनुष्य के भिन्न-भिन्न कार्यों को करनेवाले भिन्न-भिन्न अंग पर्याप्त गति करते रहते हैं। कार्य-सम्बन्धी स्फूर्ति (Functional activity) का अर्थ है उच्च कोटि का शुद्ध रक्त आना। जब मनुष्य पेशियों का ठीक-ठीक उपयोग नहीं करता तो वे स्वभावतः ही निष्क्रिय हो जाती हैं। उस समय रक्त के अन्दर अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ भर जाती हैं। सचमुच ही ऐसी अवस्था में शरीर निर्जीव सा हो जाता है। जब शरीर में अधिक संख्या में मृत सेल तथा अन्य व्यर्थ पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं तो उस शरीर वाले मनुष्य को पूर्णतया जीवित नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में निश्चय ही वह व्यक्ति अर्द्धमृतक अथवा अर्द्धजीवित कहलाता है। इस बात को सब कोई जानते हैं कि शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता रहता है। शारीरिक तन्तुओं को तैयार करनेवाले छोटे-छोटे सेलों की शक्ति और उनका जीवनकाल क्रमशः प्रतिक्षण कम होता रहता है। वे टूटे हुए सेल शिराओं के रक्त द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार ये शिराएँ बाद में मलों को निकालने में भी भाग लेती हैं। यदि मनुष्य अकर्मण्यता से जीवन

व्यतीत करता है तो ये मृत सेल और छोटे-छोटे मृत रक्तकण तन्तुओं में बहुत समय तक बने रहते हैं।

पेशी-प्रणाली शारीरिक दृष्टि से शरीर का एक ऐसा उत्तम भाग है कि यदि हम इसको अकर्मण्यता से ठीक-ठीक दशा में नहीं रख सकते तो उसका बुरा प्रभाव शरीर के अन्य भागों पर भी पड़ेगा। हमारे भोजन का अधिक भाग पेशियों में ही व्यय होता है। शरीर की उत्पन्न की हुई उष्णता सबसे अधिक परिमाण में पेशियों में ही उत्पन्न होती है। अतः उस भाग की अवहेलना करना मानो अधिक परिमाण में सभी शारीरिक भागों की क्रियाओं को अनियिमित करना है। ऐसी अवस्था में भूख बिल्कुल नहीं लगती और शरीर की सभी क्रियाएँ मन्द पड़ जाती हैं। व्यायाम वास्तव में ही क्रियात्मिका शक्ति के निर्माण का प्रधान और मुख्य साधन है। पेशियों के व्यायाम से अङ्गों में शक्ति उत्पन्न हो जाती है और समस्त क्रिया-प्रणाली तीव्र हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शारीरिक व्यायाम करने से आन्तरिक इन्द्रियाँ बलवान् और उत्तेजित हो जाती हैं।

शक्ति प्राप्त करने में विशेष रूप से दानवीय शक्ति की ही आवश्यकता नहीं है कि हम शक्तिशाली मनुष्यों के वीरता के कार्यों का अनुकरण करने का प्रयत्न करें। वर्तमान युग में पेशियों की असाधारण उन्नति अत्यन्त लाभदायक नहीं है। किन्तु सामान्य परिमाण की शक्ति को प्राप्त किये बिना किसी मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। जब इस प्रकार की शक्ति एक बार प्राप्त हो जाय तो यह बहुत अल्प परिमाण में दैनिक व्यायाम करते रहने से ही स्थिर रखी जा सकती है।

पेशियों को आवश्यक शक्ति प्रदान करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व्यायाम को किसी जटिल प्रणाली का ही अनुकरण किया जावे। व्यायाम खेल-कूदकर भी किया जा सकता है।

टहलने आदि के बाहरी खेलों से व्यायाम का कार्य सुगमता से चल सकता है। किन्तु यह बात पूर्णतया ध्यान में रखनी चाहिए कि शरीर मनुष्य को कार्य करने के लिए दिया गया है। अतएव निश्चित रूप से आवश्यक शक्ति मिलते रहने के लिए किसी निश्चित नियम का पालन अवश्य करना चाहिए।

व्यायाम के लिए सबसे प्रथम पहिले वर्णन किये हुए व्यायाम के अभ्यास पसन्द किये जा सकते हैं। यदि आपके अन्दर कोई शारीरिक दोष नहीं है तो पूर्वोक्त अभ्यासों में से किसी एक से भी शरीर को शक्ति दी जा सकती है। किन्तु यदि आप किसी शारीरिक दोष से पीड़ित हों और आप उसे दूर करना चाहते हों तो आपको व्यायाम के कुछ विशेष नियमों का पालन, धार्मिक नियन्त्रण के समान, करना चाहिए। वे नियम आपकी व्यक्तिगत आवश्यकता की पूर्ति करते रहेंगे। यदि आपकी छाती चौड़ी अथवा दबी हुई है, यदि आपके कन्धे गोल हैं अथवा एक कन्धा दूसरे से ऊँचा है, यदि आपके मेरुदंड में कहीं पर टेढ़ापन है अथवा आपकी उदर-सम्बन्धी पेशियाँ निर्बल पड़ गई हैं तो आपको उन अङ्गों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है।

आठवाँ अध्याय

प्राणायाम अथवा श्वास लेने की विधि

श्वास लेने के व्यायामों के सम्बन्ध में बड़े-बड़े मोटे पोथे लिखे जा चुके हैं। गहरे श्वास लेने के परिणामों के विषय में तो अनेक प्रकार के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किए गए हैं। तो भी यह बात पूर्णतया ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि ऐसे पूर्ण और गहरे

श्वास को जिससे फुफ्फुस पूर्णतया फैल जावें, कभी-कभी लिया जावे तो, उससे बड़ा भारी लाभ होता है। भारतवर्ष में इस प्रणाली का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम शरीर को केवल निरोग ही नहीं करता, वरन् उसको बलवान् भी बनाता है।

सामान्यतया किसी भी भारी व्यायाम से श्वास फूलने लगता है। श्वास फुलानेवाले व्यायाम अत्यन्त अधिक लाभ पहुँचाते हैं। दौड़ना और कुश्ती लड़ना अधिक बलशाली व्यायाम हैं। यह मनुष्य को गहरा श्वास लेने के लिए विवश करते हैं। इस क्रिया से—श्वास के बिना किसी विशेष व्यायाम के भी—फुफ्फुसों का पूर्ण विकास होता है। इस प्रकार के व्यायाम को नियमित रूप से पूरे वर्ष भर तक प्रतिदिन करते रहने से उसका निश्चित और सुन्दर परिणाम देखने में आता है।

किन्तु जहाँ मनुष्य अपने विशेष प्रकार के रहन-सहन के कारण ऐसे शक्तिशाली व्यायाम नियमित रूप से नहीं कर सकता, अथवा जहाँ इस प्रकार के व्यायामों के लिए समय अत्यन्त परिमित है वहाँ प्राणायाम के व्यायाम से ही बड़ा भारी लाभ देखने में आता है। ठीक-ठीक श्वास लेने में वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) और उदर तथा पीठ के भागों की स्वाभाविक क्रिया के ठीक-ठीक उपयोग का उदाहरण एक छोटा बच्चा है। लगभग सभी बच्चों में एक स्वस्थ और फुर्तीला बच्चा ठीक-ठीक श्वास लिया करता है। आपको उसके उदर को—उसके खड़े होने और झुके होने—दोनों दशाओं में ही ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। इससे आपको पता लगेगा कि श्वास अन्दर को जाते समय उदर-प्रदेश ऊपर को उठता है; और श्वास बाहिर को निकलने पर शरीर का यह भाग सङ्कुचित होकर अन्दर को दबता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि स्वाभाविक श्वास-क्रिया में शरीर की क्रिया का सम्बन्ध उदर से ही होता है, वक्षः-

स्थल के अस्थि-पञ्जर का न तो इसमें कुछ उपयोग होता ही है और न उसका उपयोग करना ही चाहिए। उसका उपयोग केवल प्राणायाम और अधिक बल के व्यायामों में ही करना चाहिए।

ठीक-ठीक श्वास लेने की विधि का अध्ययन करने के लिए किसी जटिल प्रणाली का अनुसरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि श्वास-क्रिया जटिल नहीं होती, वह अत्यन्त सरल होती है। किन्तु लाभ आपको उसका दैनिक अभ्यास करने से ही होगा। यदि आप पहिले उदर-प्रदेश को फुलाते हुए दिन भर में कई बार गहरा और पूरा श्वास लेने का अभ्यास डाला तो आपको शीघ्र ही ठीक-ठीक श्वास लेना आ जावेगा।

स्त्रियों की श्वास-प्रणाली

श्वास लेने की विधि स्त्रियों के लिए भी वही है, जो पुरुषों के लिए है। यह बात बड़ी विचित्र है कि अभी कुछ वर्ष पूर्व तक संसार का और विशेष कर डाक्टरों का यह विश्वास था कि स्त्रियों और पुरुषों की श्वास-क्रिया में मौलिक भेद है। लड़कों और लड़कियों की स्वाभाविक श्वास-क्रिया को ध्यानपूर्वक देखने से इस सिद्धान्त की निःसारता अपने-आप सिद्ध हो जाती है। कोरसेट* के सार्वजनिक उपयोग, वक्षःस्थल के द्वारा श्वास लेने, अथवा गर्दन से लगाकर पेट तक के भाग द्वारा श्वास लेने का परिणाम यह हुआ कि शरीर के कमर के आसपास की कृत्रिम रचना ही स्त्रियों के लिए श्वास लेने की स्वाभाविक रीति जान पड़ने लगी, जब कि वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी सम्बन्धी श्वास-क्रिया पुरुषों के लिए ठीक और स्वाभाविक समझी गई। किन्तु पिछले वर्षों में डाक्टरों ने

---

* कोरसेट एक प्रकार की पेटी होती है, जिसका प्रयोग पाश्चात्य सभ्यता में पली हुई महिलाएँ कमर को पतली दिखलाई देने के लिए किया करती हैं।

यह स्वीकार कर लिया कि इस अन्तर का कारण वेष-भूषा की कृत्रिमता थी और वास्तव में स्त्रियों और पुरुषों दोनों की ही स्वाभाविक श्वास-क्रिया बिल्कुल एक-सी होती है। आधुनिक फ़ैशनों से स्त्रियों की कटि-रेखा बड़ी हो जाती है और उसके चर्म में सिकुड़नें पड़ जाती हैं। जब संसार वास्तव में ही अधिक सभ्य हो जावेगा और हमारी वेषभूषा शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार बुद्धिमत्तापूर्ण होगी तो हम आशा कर सकते हैं कि उस समय स्त्रियों का वेष ऐसा होगा, जिससे वे केवल ठीक-ठीक श्वास ही न ले सकेंगी वरन् उनकी कटि-रेखा भी ठीक तौर से फैल सकेगी। किसी दिन स्त्रियाँ दामन, पेटीकोटों और मोज़ों को कमर में बाँधने के स्थान में कन्धे में बाँधने के मूल्य को समझ जावेंगी।

यदि आप अपनी श्वास-क्रिया के सन्तोष-जनक होने का निश्चय करना चाहते हों तो आप पूरे खड़े होकर एक गहरा श्वास लो और केवल अपने उदर-प्रदेश के फूलने को ही न देखो, वरन् उस प्रदेश की बगल और पीछे के भाग को भी देखो। यदि आप अपने हाथों की हथेलियों को पीठ में कटि-रेखा के ठीक ऊपर-नीचे की पसली के ऊपर रखोगे तो आप गहरा श्वास लेने पर वक्ष-उदर-मध्यस्थ-पेशी के ऊपर को उठने के कारण शरीर के इस भाग में विस्तार का अनुभव करोगे। उसी प्रकार कटि-रेखा के ऊपर करवट में नीचे की पसलियों को हाथ से दबाने पर आपको इस भाग में भी पीछे के भाग के फैलने का अनुभव अगले भाग के फैलने के साथ-साथ ही होगा। इस प्रकार आपको अनुभव हो जावेगा कि जिस समय श्वास के कारण आपका उदर-भाग फैलता है उसी समय पीठ और करवट में नीचे की पसली भी फैलती है। यह अवश्य है अत्यन्त भरा हुआ श्वास लेने में फुफ्फुसों के नीचे के भाग के भर जाने से वक्षःस्थल भी फैल जाता है।

नवाँ अध्याय

बाह्य जीवन

सभ्य मनुष्य घर में रहनेवाला प्राणी होता है। अब हम वृक्षों की चोटियों अथवा गुफाओं में न रहकर घरों में रहते हैं। हममें से बहुत से तो तङ्ग, कम हवावाले और अत्यधिक खुले हुए कमरों में ही रहते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से खाली बैठे रहनेवाले एक अमरीकावासी की अपेक्षा गुफा में रहनेवाले का स्वास्थ्य कहीं अच्छा होता है। पश्चिमी देशों के बड़े-बड़े नगरों में वाष्प द्वारा उष्ण किये हुए कमरों में स्वच्छ वायु कभी-कभी ही कठिनता से आती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनमें रहनेवालों का शरीर, मन और आत्मा भी उनके फ़र्नीचर के साथ ही साथ सूख जाता है।

घर से बाहर जाने की आवश्यकता

जीवन को अपने यथार्थ अर्थ में चरितार्थ करने के लिए हमको अपने जीवन का कुछ भाग घर के बाहिर व्यतीत करना चाहिए। बाह्य जीवन व्यतीत करने से जीवनशक्ति और स्फूर्ति बढ़ती है। इससे शक्ति तथा उत्साह में वृद्धि होती है। यदि आप सदा एक उष्ण कमरे में ही बन्द रहते हो तो आप महत्त्वाकांक्षी, प्रफुल्लवदन अथवा किसी विशेष कार्ययोग्य नहीं बन सकते।

यदि हमको कोई भी शौक़ हो तो हम घर से बाहिर निकलते हैं। यदि आप घर से बाहिर निकलने लगो तो आपका शौक़ कुछ भी होने में कोई हानि नहीं है। आपको अपने बन्द कमरे से बाहिर निकलकर शुद्ध, स्वच्छ और खुली वायु में श्वास लेने का व्यसन हो जाना चाहिए।

घर से बाहर के व्यायाम तथा खेल

घर से बाहर के अनेक व्यायाम बड़े भारी उपयोगी होते हैं, किन्तु मोटर की सैर भी घुड़सवारी के समान नहीं तो घर में बैठे रहने की अपेक्षा कहीं अच्छी है। रईसों के स्वास्थ्य मोटरों के कारण अब बहुत कुछ सुधर गये हैं। क्योंकि उनके व्यसन के कारण अब उनको घर से बाहर खुली वायु में जाना ही पड़ता है। किन्तु यदि आप घर से बाहर जाकर कोई ऐसा व्यायाम भी कर सकें, जिसमें आपके शरीर की सभी पेशियों का उपयोग किया जा सके तो उससे कहीं अधिक लाभ होगा।

बाहर वायु के अनेक प्रकार के खेल-कूद ऐसे हैं, जिनको असाधारण रूप से शक्तिशाली बनाया जा सकता है, और यदि किसी व्यक्ति में साधारण शक्ति भी हो तो उसको उससे बहुत लाभ पहुँच सकता है। यदि किसी पुरुष में फ़ुटबाल खेलने योग्य जीवनशक्ति और सहन-शीलता हो तो बाहिर के खेल में यह अत्यन्त परिश्रमवाला खेल है। प्रौढ़ तथा अधिक अवस्थावालों के लिए गॉल्फ़ (Golf) नामक खेल प्रायः अच्छा होता है। इससे नवयुवकों और स्त्रियों को भी लाभ पहुँचते देखा गया है। गॉल्फ़ से टहलने का व्यायाम तो हो ही जाता है, उसके बल्ले को घुमाने से वक्षःस्थल, भुजाओं और पीठ का भी अच्छा व्यायाम होता है। जिनको इस खेल का अभ्यास नहीं होता पहले-पहल खेलने पर उनकी भुजाओं, कन्धों और वक्षःस्थल की पेशियाँ अकड़ जाती हैं।

जीवनशक्ति बढ़ाने के लिए टेनिस बड़ा शक्तिशाली व्यायाम है। इससे सहिष्णुता अधिक बढ़ जाती है। टेनिस के खिलाड़ी की फुर्ती शक्ति और योग्यता पर निर्भर करती है। अतएव उसको चाहे जितना तेज़ और शक्तिशाली अथवा मन्दा और हल्का किया जा सकता है। टेनिस एक सुरक्षित और बुद्धिमत्तापूर्ण खेल है।

इस समय इसका प्रचार अधिकाधिक बढ़ता जाता है। इससे सभी अवस्थावाले स्त्री और पुरुष लाभ उठा सकते हैं।

नाव चलाना, दौड़ना, देहातों का काम, कुश्ती लड़ना, हाथ की गेंद (हैंडबाल), हाकी और पोलो बड़े उत्तम और शक्तिशाली खेल हैं। उनसे शारीरिक शक्ति का विकास बहुत अच्छा होता है। जिन पुरुषों में इन खेलों को खेलने योग्य शक्ति हो, उनको इन्हें अवश्य खेलना चाहिए। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक खेल को ही अपना व्यसन न बनाया जावे, वरन् सभी को बारी-बारी से अदल-बदलकर खेला जावे। दङ्गलों में कुश्ती मारने तथा अन्य इस प्रकार के खेलों की विशेषता से लाभ अवश्य है, किन्तु सर्व-सामान्य स्त्री-पुरुषों को उनमें विशेषता प्राप्त करने का यत्न नहीं करना चाहिए। यदि आप प्रत्येक के विशेषज्ञ न होकर सामान्य अभ्यासी हों तो भी आपको सभी खेल खेलने चाहिएँ। क्योंकि इससे आपका स्वास्थ्य सब प्रकार से उन्नत होकर आपको अधिक से अधिक आनन्द आवेगा।

जो लोग तेज़ नहीं हैं, और जिनको इसी कारण खुली वायु की अधिक आवश्यकता है, उनके लिए अन्य अनेक कम परिश्रमवाले खेल भी हैं। साइकिल और घोड़े पर चढ़ना कुछ कम शक्ति-वाले अच्छे व्यायाम हैं। पाश्चात्य देशों के लिए बरफ़ पर चलनेवाले जूतों से फिसलना एक आदर्श-खेल है। क्योंकि उसमें किसी विशेष शक्ति की तो आवश्यकता है नहीं, और उससे हृदय, फुफ्फुस तथा अन्य प्रधान अंगों को शक्ति मिलती है, इसके अतिरिक्त उस ऋतु की तेज़ और ठंडी वायु भी बड़ी भारी पुष्टिकर होती है। बरफ़ के सभी प्रकार के खेल उपयोगी होते हैं।

तैरना शारीरिक उन्नति और स्वास्थ्य-निर्माण दोनों ही दृष्टि से अत्यंत उपयोगी होता है किन्तु यदि आपकी जीवन-शक्ति

परिमित ही है तो जल में अधिक देर तक मत ठहरो। यदि आप एक विशेषज्ञ के समान फुर्ती से तैरते हो तो उसमें अधिक परिश्रम नहीं पड़ता। यह अवश्य है कि तैरने की कुछ विधियों में भारी से भारी पहलवानों को भी बड़ा भारी परिश्रम पड़ जाता है। तैरने से स्नान और व्यायाम दोनों का ही आनन्द आता है, ठीक-ठीक परिस्थिति में यह बड़ा भारी अमूल्य व्यायाम है। अधिक मांस वाले मनुष्य जल में अधिक देर तक ठहर सकते है, किंतु यदि आप 'पतले' हो तो इस बात से सावधान रहो कि अत्यन्त अधिक स्नान से आपका वजन कम न हो जावे। पतले पुरुष अथवा स्त्री को पुष्टि के लिए दैनिक तैरना चाहिए। यदि यह व्यायाम अधिक देर तक न किया जावे तो इससे शरीर का वजन भी बढ़ता

किन्तु इस प्रकार के व्यक्तियों का वजन एक ऋतु में अत्यधिक स्नान से कम हो जाया करता है।

खेल में जीत और हार की मनोवृत्ति

हमारे व्यायाम के सम्बन्ध में एक बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और वह है खेलने की मनोवृत्ति को उत्पन्न करना। यदि आप अपनी शान को भूलकर खेलना न सीखोगे तो न तो खेलों का पूरा आनन्द ही ले सकते हो और न आप उससे कुछ अधिक लाभ ही प्राप्त कर सकते हो। इस बात से प्रसन्न होने का यत्न करो कि आप जीवित और उन खेलों को खेलने योग्य हो। अनेक व्यक्ति खेद-कूद में भी गम्भीर बने रहते हैं। किसी भी प्रकार खेल को जीतने की इच्छा का मस्तिष्क पर बहुत बोझ पड़ता है। अपने मस्तिष्क को इस प्रकार का बनाये रखो कि आप "आनन्द का उपभोग कर रहे हो।" यद्यपि 'जीतने के लिए यत्न करना' भी प्रशंसनीय है, किन्तु किसी भी खेल का वास्तविक उद्देश्य आनन्द प्राप्त करना है, फिर आप उसमें हारें अथवा जीतें। ऐसे उदाहरण भी देखने में आये हैं जहाँ किश्ती अथवा

फुटबाल के हारे हुए खिलाड़ी भी प्रसन्न होते ही देखे गये हैं। जीतने की इच्छा से मस्तिष्क पर पड़नेवाले वेग की कल्पना करो। जीतना वास्तव में अच्छा है, किन्तु किसी योग्य विरोधी से हारने में भी आनन्द आता है। खेलने में मनोभावों पर ज़ोर मत दो, वरन् उनको हँसने का साधन समझो। केवल इस मनोवृत्ति से ही आप खेलों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि आप बहुत देर तक खेलते रहें, आवश्यक यह है कि खेलते-खेलते आपके हृदय, फुफ्फुस, तथा अन्य अङ्गों की गति इतनी हो जावे, जिससे आप के सम्पूर्ण शरीर में रक्तसंचार अधिक अच्छा होने लगे। व्यायाम से साँस फूल जानी चाहिए। यदि थोड़ा पसीना भी आने लगे तो और भी अच्छा है। सबसे पहले घर से बाहर निकलो, फिर अपनी पसन्द के किसी व्यायाम अथवा खेल को खोजो। वह ऐसा आकर्षक हो कि उसके कारण आप घर से प्रतिदिन निकल पड़ा करें। खुली वायु में यथाशक्ति अधिक से अधिक देर तक रहो। यदि सम्भव हो तो घर से बाहर ही सोने का भी यत्न करो। आज-कल के स्त्री-पुरुषों की ग्राहक-पौदों से उपमा दी जा सकती है। हम लाड़-चाव में पलने के सार्वजनिक नियम के अभ्यासी बन गए हैं, जितना ही हम घर की चहारदीवारी में कम रहेंगे, और अधिक खुली वायु में श्वास लेंगे उतने ही अधिक हम बलवान्, स्वस्थ और योग्य बनेंगे।

टहलना

घर के बाहर के एक व्यायाम में तो कुछ भी लागत नहीं लगती, साथ ही इसको अन्य व्यायामों की तुलना में सबसे अच्छा भी कहा जा सकता है। जीवन-शक्ति और सहिष्णुता के निर्माण के सम्बन्ध में तो इस व्यायाम को निश्चय से ही सबके अच्छा कहा जा सकता है। यह व्यायाम टहलना है। इस व्यायाम को

इच्छानुसार चाहे जितना मृदु अथवा कठोर बनाया जा सकता है। स्वास्थ्य-निर्माण के लिये आप चाहे जो व्यायाम करें किन्तु उसके साथ कुछ न कुछ टहलना अत्यन्त आवश्यक है।

टहलना प्रत्येक शारीरिक कार्य के लिए ही अत्यन्त उपयोगी है। यह शोधक अङ्गों के कार्यों को अत्यधिक बल पहुँचाता है। कोष्ठ-बद्धता को दूर करने की तो यह महौषधि ही है। हृदय को बलवान् करने तथा यकृत् और वृक्कों को बल पहुँचाने में यह अत्यन्त लाभकारी है। यह समस्त अङ्गों को ही ठीक कर देता है।

इसके अतिरिक्त, मानसिक बल पहुँचाने में भी यह व्यायाम अत्यन्त उपयोगी है। यह मस्तिष्क में से 'जालों' को झाड़ देता है। यदि आप जटिल समस्याओं से तङ्ग आ गए हों तो टहलने से पूर्व उनपर विचार मत करो। अधिक उत्तम और शुद्ध रक्त से आपकी मानसिक योग्यता कहीं अधिक बढ़ जाती है। उस समय आप अधिक शीघ्रता से विचार करने लगोगे, उस समय आपके निष्कर्ष अधिक स्पष्ट, निश्चित और निर्भर रहने योग्य होंगे। एक उपन्यास-लेखक अपने उपन्यास की कहानी को सोचने और शुद्ध करने के लिए बहुत कुछ अपने टहलने पर ही निर्भर रहा करता था। इस ग्रन्थ के लेखक ने भी अपने ग्रन्थों के लिखने में इसी पद्धति का अनुसरण किया है। मैं अन्य कई ऐसे लेखकों को भी जानता हूँ, जो इसी प्रकार टहलकर ही अपने ग्रन्थ के भावों को सोचा करते हैं। यह कहा जाता है कि लकड़ी चीरने से मन अधिक बलिष्ठ होता है, घोड़े की सवारी और साइकिल चलाने को भी इस विषय में उपयोगी बतलाया जाता है; किन्तु घर से बाहर के व्यायामों में टहलना निस्सन्देह प्रभावशाली मानसिक व्यायाम है। यह रक्त-सञ्चार को बढ़ाता तथा शरीर के जीवनशक्ति-युक्त अङ्गों को उत्तेजित करता है; किन्तु टहलने में इतनी अधिक शक्ति

भी नहीं लगा देनी चाहिए कि मस्तिष्क का असाधारण रूप से फुर्तीलापन रुक जावे।

टहलने से होनेवाले लाभों का पूर्ण उपयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि टहलने में सुस्ती न की जावे। फैशन के प्रदर्शन करने के ढङ्ग पर मत टहलो। रविवार को मध्याह्नोत्तर काल में बाज़ार में घूमने का प्रलोभन प्रायः हुआ करता है, किन्तु ऐसी परिस्थिति में टहलने से कुछ लाभ नहीं होता। यदि सम्भव हो तो नगर के बाहिर की सड़कों पर अथवा खेतों में टहलने के लिए निकल जाया करो। अपने प्रत्येक चरण में कुछ न कुछ शक्ति का उपयोग करो। अपने क़दम फुर्ती से इस प्रकार उठाओ, मानों आप उसका आनन्द ले रहे हो। यह निश्चय है कि इस प्रकार करने से आपको वास्तव में ही आनन्द आने लगेगा। यदि आप को पहिले पहल कुछ क़दम चलने में कुछ परिश्रम भी करना पड़े तो वह अवश्य कर लो; आपको उससे शीघ्र ही उन्नति होती हुई जान पड़ेगी। जिस टहलने में आप प्रत्येक चरण में शक्ति का उपयोग करो वह वास्तव में बड़ा भारी पुष्टिकर होता है। वह आप के सम्पूर्ण अङ्गों को विचलित कर देगा। उससे आपके सब कार्यों में फुर्ती आवेगी और आपको पूर्णतया जीवित होने का अनुभव होगा। यदि आपको देहातों में घूमने की सुविधा है, तब तो आपका भाग्य ईर्ष्या योग्य है।

टहलते समय का प्राणायाम

टहलते समय श्वास-क्रिया के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दो, बार-बार पूरा और गहरा श्वास लिया करो। श्वास लेने में उदर-प्रदेश को फैला दिया करो। यदि आप चाहें तो इस श्वास को और अधिक बढ़ाकर वक्षःस्थल की दीवारों तक ला सकते हो, यद्यपि नियमानुकूल यह आवश्यक नहीं है। निःसन्देह टहलने के समय चिवुक को अन्दर-नीचे की ओर

पीछे को करने की उस क्रिया को कई-कई बार करो, जो शारीरिक शक्ति और जीवन शक्ति के निर्माण में अत्यन्त उपयोगी है। इसका वर्णन चुल्लिका ग्रन्थि को बलिष्ठ करने के अध्याय में किया गया है। इस क्रिया को श्वास भरकर उदर-प्रदेश को फुलाते समय करना चाहिए। इस क्रिया को टहलते समय तब तक करते रहना चाहिए, जब तक पीठ और गर्दन की पेशियाँ न थक जावें। इससे आपको मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की शक्ति बढ़ेगी। टहलते समय यदि ताल लगाने के जैसा समान रूप से श्वास लिया जावे तो इससे और भी अधिक लाभ होता है। इसका अभिप्राय यह है कि जितना समय श्वास को अन्दर से बाहिर निकालने में लगे, उतना ही बाहिर से अन्दर खींचने में भी लगाना चाहिए। उदाहरणार्थ दस क़दम तक चलते हुए श्वास को अन्दर खींचो और दस क़दम में ही उसको बाहिर निकालो। क़दमों को आप इच्छानुसार छः, आठ, दस अथवा बारह भी कर सकते हैं। यदि आपके मन में कोई ऐसा सङ्गीत हो, जिसकी ताल टहलते समय आपके क़दमों के अनुसार लगाई लगाई जा सके और उसी के साथ श्वास के अन्दर लेते और बाहिर निकालते समय क़दम उठाये जावें तो आपको पता लगेगा कि आप एकरसता और आनन्द में इस प्रकार झूमते चले जावेंगे कि आप को तय किये हुए मार्ग का भी पता न चलेगा। इस प्रकार ताल अथवा एकरसता से श्वास लेना गहरे श्वास लेने के अभ्यास को टालने का अच्छा साधन है।

टहलते समय गहरा श्वास लेने के अभ्यास का एक और भी ऐसा व्यायाम है, जो अत्यन्त उपयोगी है। वह व्यायाम पाचन-क्रिया तथा अन्य आन्तरिक अङ्गों को भी बल पहुँचाता है। यह व्यायाम लगातार चार, छः अथवा आठ कदम तक पूर्णतया भरे हुए श्वास को रोकना तथा साथ ही साथ उदर-प्रदेश को पूर्णतया

फुलाये रखना है। यह क्रिया प्रायः वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी तथा उदर-प्रदेश की पेशियों द्वारा की जाती है। इस क्रिया को पेशियों को बार-बार लगातार सिकोड़ने और फैलाने से किया जाता है। जिस समय आप उदर को फुलाये हुए श्वास को रोके हुए हो उसी समय उन छः अथवा आठ क़दम में पेशियों को कई कई बार सिकोड़ो और ढीला छोड़ो; इसके पश्चात् स्वतंत्रतापूर्वक श्वास को बाहर निकालो। दो-तीन श्वास के पश्चात् इस क्रिया को फिर करो। इस क्रिया से शरीर को मलने जैसा प्रभाव होता है। इससे अन्दर के सभी अंगों की गति बड़ी अच्छी होकर वे सब बलवान् हो जाते हैं।

यदि आपको कहीं बाहर जाने का अवसर हो तो आप इस प्रकार अपने समय को अच्छी तरह बिता सकते हैं। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि दो या तीन सप्ताह तक घर से बाहिर किसी जंगल में अथवा किसी झील के किनारे व्यतीत करने और शुद्ध वायु में कुछ आनन्दप्रद व्यायाम करने से आश्चर्य-जनक लाभ होते हैं।

यदि थोड़े दिनों के लिए भी बाहिर रहने से इतना अधिक लाभ होता है तो प्रतिदिन और विशेष कर ग्रीष्म-ऋतु में कुछ समय घर से बाहर अवश्य व्यतीत करना चाहिए। अतएव प्रतिदन सायंकाल के समय दो या तीन घंटे अवश्य बाहिर रहा करो। सायंकाल के समय किश्ती चलाना, तैरना, अथवा कोई ऐसा खेल खेलना चाहिए, जिससे आप आनन्दपूर्वक दो या तीन घंटे खुली वायु में व्यतीत कर सको। कम से कम आप सदा ही टहल तो ख़ूब सकते हैं। यदि आप रात्रि में शीघ्र सोते हों तो प्रातःकाल इतने शीघ्र उठ सकते हैं कि आप अपने काम पर जाने अथवा बैठने से पूर्व एक या दो घंटे टहल सकें। यदि आप किसी ऐसे दफ़्तर में जाते हैं, जहां आपको दिन भर काम करना पड़ता है, तो उस दशा

में आपके लिए प्रातःकालीन वायुसेवन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यदि आप का दफ़्तर आठ या नौ बजे ही खुल जाता है और आप टहलने के लिए समय नहीं निकाल सकते तो आपको थोड़े चक्करदार मार्ग से अपने दफ्तर जाकर यथासंभव अधिक से अधिक वायु अपने फेफड़ों में भर लेनी चाहिए। यथाशक्ति अधिक से अधिक समय तक खुली वायु में रहो। अनेक व्यक्ति सोचा करते हैं कि उनको टहलने का अवकाश ही नहीं है। वह समय न होने का बहाना उपस्थित किया करते हैं, किन्तु रोग का आक्रमण होने पर उनके पास बिस्तर पर पड़े रहने के लिए पर्याप्त समय आ जाता है। खुली वायु में रहनेवाले स्त्री अथवा पुरुष बहुत कम बीमार पड़ते हैं। खुली वायु के द्वारा अत्यधिक जीवनशक्ति प्राप्त होने से आपको अपने समय का यथाशक्ति अधिक से अधिक भाग खुली वायु में व्यतीत करना चाहिए। बाहिर जाने का स्वभाव बना लो। इससे आपकी योग्यता इतनी बढ़ जावेगी कि आप कम समय में अधिक कार्य कर सकोगे।

दसवाँ अध्याय

उदर को बलिष्ठ करना

जीवन-शक्ति निर्माण की आवश्यकताओं में सब से प्रथम आवश्यकता उदर को बलिष्ठ करने की है। रक्त-निर्माण की जीवन-शक्ति-युक्त सभी प्रणालियों का आरम्भ उदर में ही होता है। इसी में भोजन में पहिले-पहल ऐसे परिवर्तन होते हैं, जो रक्त नामक जीवन-निर्माण करनेवाले तरल के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

अतएव उस महत्त्वपूर्ण अङ्ग को बलिष्ठ करने के महत्त्व का कोई वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हो सकता।

बलवान् उदर का अभिप्राय उदर के सामने की पेशियों से नहीं, वरन् उसके अन्दर की दीवारों की पेशियों से है; क्योंकि उदर की रचना बहुत कुछ उन्हीं से होती है। यदि पाचन-क्रिया को प्रत्येक बात में संतोषपूर्ण बनाना है तो पाचन-प्रक्रिया में महत्त्व-पूर्ण भाग लेनेवाले इन पेशी-सूत्रों (Muscular Fibres) की तहों का बलवान् होना आवश्यक है।

उदर को बलवान् करने का कार्य पूर्ण रूप से व्यायाम से ही नहीं होता। यह आवश्यक है कि उदर को बलवान् बनाने के लिए उस पर सदा ही बुद्धिमत्तापूर्वक ध्यान रखना चाहिए। उदा-हरणार्थ आप अपने उदर को जूठन का बेठन बनाकर ही यह आशा नहीं कर सकते कि आपके अङ्ग बलवान् बन जावें। यदि आपको वास्तव में ही जीवनशक्ति निर्माण के सब से उत्तम परिणाम निकालने की अभिलाषा है तो आपको भोजन को निय-मित करने के बुद्धिमत्तापूर्ण नियमों के सम्बन्ध में कम से कम मौलिक बातों को अवश्य सीख लेना और उस ज्ञान को प्राप्त करके उसका प्रयोग अपने जीवन पर प्रतिदिन करना चाहिए। इस प्रणाली में आहार-नलिका को शुद्ध और बलिष्ठ करने के वर्णन वाले अध्याय में दी हुई सूचनाएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस विधि से आपकी एक रूप में कार्य करने की शक्ति बढ़ेगी, जिससे आपमें अधिक उत्तम रक्त बनने लगेगा। इससे न केवल उदर ही बलिष्ठ होगा, वरन् शरीर के अन्य सब अङ्ग भी प्रबल होंगे। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली केवल इस अङ्ग को ही शुद्ध नहीं करती वरन् पाचक रस बनानेवाली भिन्न-भिन्न ग्रन्थियों (Glands) को भी शुद्ध करती है। अतएव यदि इस अङ्ग के कार्य के सम्बन्ध में बार-बार कठिनाइयाँ आवें तो उक्त अध्याय

में वर्णन की हुई शुद्धि और बलिष्ठ करने की आरम्भिक विधियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

भोजन तथा व्यायाम

अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न व्यायाम उदर पर अपना थोड़ा बहुत प्रभाव दिखलाते हैं। क्योंकि वे इस अंग को यन्त्रीय रूप से उत्तेजित करते हैं। शरीर के धड़ को झुकाने और लपेटने की सभी क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से अपने सीधे यान्त्रिक प्रभाव के कारण उदर के कार्य को बल पहुँचाती हैं। इस प्रकार की सभी क्रियाएँ अत्यन्त उपयोगी होती हैं, यद्यपि भोजन के ठीक बाद कोई ऐसा कठोर व्यायाम नहीं करना चाहिए जिससे पाचन-क्रिया में हस्तक्षेप हो। इस प्रकार का हस्तक्षेप उस समय होता है जब पेशियों से इतना अधिक काम लिया जावे कि उनको उस समय अत्यधिक परिमाण में रक्त की आवश्यकता आ पड़े, जिस समय उदर को पाचन-क्रिया के वास्ते बहुत से रक्त की आवश्यकता हो। इस बात को सभी समझते हैं कि पाचन-अङ्गों को अपने कार्य को निर्विघ्नता से करने देने के लिए भोजन के पश्चात् कम से कम एक घंटे तक कोई काम नहीं करना चाहिए। उदर को बलिष्ठ करने के लिए झुकने अथवा शरीर को मरोड़ने की क्रियाएँ भोजन के एक घंटे के पश्चात् उपयोगी होती हैं, किन्तु यदि उनको भोजन के पश्चात् तुरन्त ही किया जावे तो उनसे पाचन-क्रिया में बाधा आती है। इस महत्त्व-पूर्ण अङ्ग की शक्ति को बढ़ाने के लिए आहार-नलिका को शुद्ध करने के लिए बतलाई हुई उस प्रणाली और उसके व्यायामों को करना चाहिए, जिनका वर्णन उक्त नामवाले छठे अध्याय में किया गया है। किन्तु यदि किसी में उन व्यायामों को करने योग्य पर्याप्त शक्ति न हो तो उसको सप्तम अध्याय के व्यायामों को उष्ण जल-पान विधि के साथ करना चाहिए।

इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि उदर को बलिष्ठ करने के लिए किसी व्यायाम पर निर्भर रहने की अपेक्षा नियमित आहार-विहार का होना आवश्यक है।

उदर को बलिष्ठ करने के लिए अपने दैनिक जीवन का कार्य-क्रम इस प्रकार का बना लेना चाहिए, जिससे समस्त शरीर से पर्याप्त परिश्रम लिया जाता रहे, और उसके प्रत्येक भाग को पुष्टिकर पदार्थ मिलता रहे। उत्तम पाचन-क्रिया के लिए फुर्तीला जीवन सदा अनुकूल रहता है; यदि दिन का अधिकांश भाग घर के बाहर ही व्यतीत किया जावे तो और भी अच्छा है; क्योंकि इससे भूख खुलकर लगेगी और उदर शरीर की शक्ति के लिए आवश्यक कार्य स्वयं कर लेगा। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि उदर को बलिष्ठ और स्वस्थ रखने के लिए नियमित और फुर्तीला जीवन अत्यन्त आवश्यक है। शरीर को अङ्गों का संग्रह न समझकर एक सम्पूर्ण रूप समझना चाहिए। शरीर के एक भाग को हानि पहुँचानेवाली वस्तु समस्त शरीर को ही हानि पहुँचावेगी। यह सत्य है कि यदि उदर (आमाशय) निर्बल हो तो उसको दुष्पाच्य भोजनों से भरकर और भारी नहीं करना चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा निर्बल भोजन भी न किया जावे जो या तो पहिले ही पचा हुआ हो, अथवा जो केवल निर्बल उदरवालों के लिए ही उपयुक्त हो। यह आवश्यक है कि मनुष्य को ठीक-ठीक बना हुआ स्वाभाविक और स्वास्थ्यकर पर्याप्त भोजन मिलना चाहिए। यदि यह कर लिया गया और आहार के सम्बन्ध में बुद्धिगम्य साधारण नियमों का पालन किया गया, तो उदर बलिष्ठ न होने और पाचनशक्ति न होने का कोई कारण नहीं। इस विषय में बाह्य-जीवन साधारण फुर्ती, और उदर तथा अन्य अंगों को उन्नत करनेवाले अन्य कार्यों के लिए इससे अधिक बल नहीं दिया जा सकता।

ग्यारहवाँ अध्याय

भोजन करने की विधि

कहने को तो वर्तमान सभ्यता को उन्नति का चिह्न समझा जाता है, किन्तु इसके कारण स्वाभाविक जीवन में असंख्य दोष आ गये हैं। पशु को यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि वह क्या खावे और क्या न खावे। उसका जीवन उसके लिए पहिले से ही यत्न-पूर्वक ढला होता है। उसको अपना भोजन प्रकृति द्वारा मिलता है और वह भी अत्यधिक परिमाण में नहीं; अतएव उसको इस प्रकार खाने को विवश होना पड़ता है कि जिससे वह उस भोजन से अधिक से अधिक बल तथा स्फूर्ति प्राप्त कर सके। भूख उसके खाने पर शासन रखती है, अतएव वह भोजन को सदा ही आनन्दित होकर खाता है। यदि हम अपने भोजन में जाने-वाली उनकी यान्त्रिक तैयारियों को सम्मिलित न करें तो हमको भी भोजन के विषय में किसी प्रकार के उपदेशों की आवश्यकता न पड़े और पड़े भी तो बहुत कम; क्योंकि यदि हम अपना भोजन स्वाभाविक ढङ्ग पर करें तो हमको उसे चबाना पड़े। पाचन-क्रिया की मौलिक आवश्यकता यही है।

पाचन-क्रिया में स्वाद का महत्त्व

आपको भूख के महत्त्व को भली भाँति समझ लेना चाहिए। जब तक भोजन का पूर्ण आनन्द नहीं लिया जावेगा, वह लाभदायक नहीं हो सकता। उसका स्वाद उत्तम होना ही चाहिए। भोजन जितना ही अधिक स्वादिष्ठ होगा, उसका पाचन भी उतना ही शीघ्रतापूर्वक होगा। अनेक लोगों का विचार है कि भोजन को आवश्यक रूप से स्वाद-रहित होना चाहिए, अनेक साधु-महात्मा

तो भोजन के स्वाद को जान-बूझ कर बिगाड़ देते हैं। यह बड़ा भारी ग़लती है। इस प्रकार के भोजन का परिणाम प्रायः प्रत्येक बार हानिप्रद होगा। सबसे अधिक उपयोगी भोजन वही है, जिसको आप पसंद करें। यह अवश्य है कि आपकी पसन्द स्वास्थ्य-वर्द्धक वस्तुओं से ही होनी चाहिए। भोजन का स्वाद पाचनक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, अतएव आपको अपने भोजन को पसन्द करते समय अपने स्वाद की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

भोजन को चबाना

आपको अपने भोजन का आनन्द लेने के साथ साथ उसको पूर्णतया चबाना भी चाहिए। उसको तब तक चबाते रहना चाहिए, जब तक वह तरल होकर स्वयं ही आपके हलक़ से नीचे न चला जावे। भोजन को कभी भी शीघ्रतापूर्वक नहीं निगलना चाहिए। निगलने की क्रिया का तो आनन्द लेने में पता भी नहीं चलना चाहिए। भोजन के आनन्द का अधिक उपयोग करने के लिए प्रत्येक ग्रास को मुख में तब तक चबाते रहो जब तक वह आपके बिना जाने ही गले से नीचे न उतर जावे। भोजन के पूर्ण आनन्द से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए चबाना अत्यंत आवश्यक है।

अब पाचन-क्रिया में भोजन के अधिक आनन्द के प्रभाव पर ध्यान दो। जब कोई व्यक्ति किसी भूख बढ़ानेवाले भोजन को चबाता है तो पाचन-क्रिया उस भोजन के लेने को तैयार हो जाती है। पाचन-क्रिया में इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य को करनेवाली भिन्न-भिन्न ग्रन्थियाँ उदर में अपने-अपने रसों को डालना आरम्भ करती हैं; परिणामस्वरूप भोजन जब उस अंग में पहुँचता है तो उसके स्वागत के लिए प्रत्येक बात तैयार मिलती है। पूर्णतया चबाये जाने से, थूक के साथ मिलकर, भोजन पहिले से कुछ-

कुछ पच जाता है और शेष क्रिया को पूरा करने के लिए उदर तैयार रहता है। इन परिस्थितियों में कार्य सुगम और सन्तोषप्रद हो जाता है, और पाचन-कार्य बिना जाने ही हो जाता है। आपको इसका अनुभव भी नहीं होता कि आपके पेट है भी। स्वस्थ पुरुषों को कितनी ही बार यह कहते सुना जाता है कि उनको उदर के अस्तित्व का ध्यान भी नहीं रहता। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि उनके उस अंग में दर्द अथवा अन्य कोई रोग कभी नहीं होता। इसके विरुद्ध अपच के रोगी को इस अंग के अस्तित्व का पता लगातार इतना अधिक रहता है कि वह अपने को 'उदर-रूप' ही समझता है।

भोजन के समय प्रसन्न रहने का भी ध्यान रक्खो। आपके मन को भोजन के आनन्द का अनुभव करना चाहिए। आपका ध्यान किसी प्रकार भी किसी अन्य गंभीर विचार में नहीं जाना चाहिए। यदि आप समाचारपत्र पढ़ते अथवा गंभीर वार्तालाप करते होते हो तो आप पाचन-प्रणाली में विघ्न डालते हो; क्योंकि पाचक-रसों को उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियों के कार्य की गति को बढ़ाने के लिए भोजन से पूर्ण आनन्द लेना आवश्यक है। अतएव, भोजन के समय उसका आनन्द लेने के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर ध्यान मत दो।

भोजन की बाधाएँ

यदि आपको रेलगाड़ी पर जाने को शीघ्रता हो तो भोजन को निगल जाने की ग़लती मत करो। अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर अथवा गाड़ी में बैठकर फ़ुर्सत में ही भोजन करो। इस बात को स्मरण रक्खो कि काम करने में तो काम के परिमाण का महत्त्व होता है, किन्तु भोजन करने में इसके विरुद्ध उसके आनन्दपूर्वक करने का महत्त्व होता है। यदि आपके पास समय बहुत कम है तो शीघ्रतापूर्वक अधिक भोजन

करने की अपेक्षा ठीक तौर पर थोड़ा भोजन करना सदा अच्छा होता है।

विशेष कर जब आप क्रोधित अथवा दुःखी हो तो भोजन मत करो। भोजन के समय किसी बात की भी बाधा न आने दो। यदि भोजन के समय किसी प्रकार ध्यान बँट जाता है तो उससे भोजन का आनन्द लेने में बाधा आती है। अतएव ऐसी परिस्थिति आने पर भोजन में देर लगाना, अथवा सुविधा का समय मिलने पर दूसरे समय भोजन करना कहीं अच्छा है।

जिस वार्तालाप में कुछ विशेष ध्यान न देना पड़े उससे कोई हानि नहीं है। दूसरे शब्दों में भोजन के आनन्द में बाधा न देने-वाले किसी भी अन्य कार्य का करना वर्जित नहीं है। उदाहरणार्थ, सरल सङ्गीत अथवा किसी अन्य प्रकार का आमोद-प्रमोद भोजन में सहायक ही होता है। अतएव पाश्चात्य होटल स्वाभाविक तथा उत्तम संस्था गिने जाते हैं। बिरादरी का भोज भी भोजन में आनन्द बढ़ाने के कारण स्वाभाविक रूप से लाभप्रद होता है।

भोजन के समय जल पीना

भोजन के समय जल पीने के सम्बन्ध में बहुत कुछ मतभेद है। भोजन के समय बार बार जल पीने की प्रकृति की पीछे निन्दा की जा चुकी है। अनेक व्यक्तियों के गले के नीचे जल के बिना एक ग्रास भी नहीं उतरता। अनेक पुरुषों को, तीन या चार ग्रास के पश्चात् फंदा लग जाने के भय से, जल अथवा कोई भी पेय पदार्थ पीना पड़ता है। इस प्रकार की प्रकृति भी अच्छी प्रकृति नहीं है। भोजन के समय जल को केवल प्यास लगने पर ही पीना चाहिए। किन्तु यदि किसी व्यक्ति को भोजन के समय जल पीने का अभ्यास बिल्कुल ही न हो तो उसको बिना प्यास के भी बीच में दो एक बार थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिए; क्योंकि पाचन-क्रिया के लिए जल का कुछ भाग होना आवश्यक है।

यदि पाचन-क्रिया में कुछ कठिनता हो अथवा पाचन-शक्ति निर्बल हो गई हो तो भोजन से पन्द्रह मिनट अथवा आध घंटा पूर्व थोड़े से उष्ण जल का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार उष्ण जल पीने से उदर शुद्ध हो जाता है और उदर की ग्रन्थियों के उत्तेजित हो जाने से पाचन की योग्यता वास्तव में ही बढ़ जाती है। इस प्रकार पिये जानेवाले जल का परिमाण रोगी की शारीरिक दशा के अनुसार तीन छटाँक जल से लगाकर एक सेर तक हो सकता है। भोजन के समय पिये जानेवाले जल का परिमाण भी व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार ही होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि आप भोजन ठीक-ठीक नहीं कर पाते और आपको अपने शरीर को ठीक करने के लिए उसके वज़न को बढ़ाने की आवश्यकता है, तो कुछ अधिक पेय-पदार्थ सदा ही लाभदायक सिद्ध होगा। यह अवश्य है कि पेय पदार्थ इतना अधिक न हो कि उसके कारण पाचन-क्रिया में विघ्न पड़े। जिन्हें पट्ठों को अधिक पुष्ट करना हो उनके लिए तो अधिक जल का सेवन सदा ही लाभदायक है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जल अधिक पीना हो तो किञ्चित् उष्ण अथवा उष्ण ही पीना चाहिए।

भोजन के समय अधिक परिमाण में ठण्डा जल पीना हानिकारक है। वर्तमान सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ भोजन के साथ बरफ़ का जल पीने का बहुत कुछ प्रचार हो गया है। भोजन-सम्बन्धी ग़लतियों में यह सबसे अधिक हानि-प्रद है। क्योंकि उदर को ठंड लग जाने से प्रायः पाचन में विघ्न होकर अपच का रोग हो जाया करता है। बिना बरफ़ का अत्यन्त शीतल जल भी अत्यन्त अल्प मात्रा के अतिरिक्त हानि-प्रद है। दो भोजन के बीच में भी बरफ़ का जल अथवा अत्यन्त शीतल जल नहीं पीना चाहिए, क्योंकि अत्यधिक शीतल होने से उसको शारीरिक आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त मात्रा में नहीं पिया जा

सकता। कम शीतल जल को स्वतन्त्रतापूर्वक पिया जा सकता है। उग्र व्यायाम के द्वारा अधिक उष्ण करने में भी उसका उपयोग किया जा सकता है। जल उतने ही तापमान का पीना चाहिए जो अत्यधिक अच्छा लगे। अधिक ठण्डे जल को तो कभी भी नहीं पीना चाहिए। भोजन के समय भी यदि अधिक जल पीना हो तो उसको कम अथवा अधिक उष्ण अवश्य कर लो।

बिना भूख भोजन करना

भोजन-सम्बन्धी ग़लतियों में सबसे बड़ी ग़लती बिना भूख खाना है। बिना भूख भोजन करना उदर के साथ अपराध है। तो भी यह प्रथा अत्यधिक प्रचलित है और इसी कारण सभ्य जातियों में अपच अधिक होता है। मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी प्राणी बिना तेज़ भूख लगे भोजन नहीं करता। कई सहस्र व्यक्ति केवल 'भोजन का समय' हो जाने के कारण भूख का बिना विचार किये हुए नियमित रूप से भोजन करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति केवल अभ्यासवश भोजन करते हैं, यद्यपि वे उसको प्राय: कर्तव्य ही समझते हैं। भोजन को कभी भी कर्तव्य नहीं समझना चाहिए, न उसका कभी अभ्यास ही डालना चाहिए। भोजन जब अच्छा नहीं लगता तो वह लाभ-प्रद नहीं होता।

कभी-कभी यह भी सुनने में आता है कि शरीर की सामर्थ्य को बनाये रखने के लिए भोजन करना ही चाहिए। भूख लगने की दशा में यह बात बिल्कुल ठीक है, किन्तु यदि भूख न लगी हो तो उस समय भोजन करना सबसे बड़ी ग़लती है। उस अवस्था में खाने से सामर्थ्य बनी नहीं रहती, वरन् न पचने योग्य भोजन का बोझ शरीर पर डालने से सामर्थ्य कम हो जाती है। वह आपको खाये हुए भोजन से नहीं वरन् पचाये हुए भोजन से प्राप्त होती है और पाचन-शक्ति भूख और उसके आनन्द पर निर्भर है। आनन्द

का प्रश्न ही वास्तव में भूख का प्रश्न है। यदि आप भूखे नहीं हो और भोजन के समय उसके आनन्द का उपयोग नहीं कर सकते तो जब तक आपको भूख न लगे, भोजन मत करो। इस विषय में अपनी स्वाभाविक वृत्ति का अनुसरण करने की बुद्धि प्रत्येक पशु में है, किन्तु सहस्रों पुरुष केवल समय हो जाने के कारण भोजन करते और यह समझते हैं कि नियत समय पर भोजन न करने से उनमें निर्बलता आ जावेगी।

भोजन कितनी बार करे?

भूख के प्रश्न के साथ ही यह प्रश्न भी आता है कि प्रतिदिन कितनी बार भोजन करना चाहिए। तीन समय भोजन करने की रीति उस प्राचीन काल की है जब मनुष्य को घर से बाहिर जाकर दिन भर कठिन शारीरिक श्रम करना पड़ता था। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आजकल के निरुद्यमी पुरुषों के लिए भी तीन बार भोजन करना ही सभ्य जीवन का चिह्न है। कुछ लोग केवल दो बार ही भोजन करते हैं; शिकारी तथा अन्य अनेक व्यक्ति केवल एक बार ही भोजन करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रश्न को व्यक्तिगत पेशे तथा आवश्यकता के अनुसार ही हल किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति कठिन परिश्रम करता है तो उसको दिन में तीन बार भूख लगती है। उसका स्वास्थ्य उसी से अच्छा रह सकता है। किन्तु यदि आप शारीरिक श्रम का कार्य नहीं करते तथा आपको न तो तीन बार भूख लगती है और न आप उसका आनन्द हो ले सकते हो तो आपके लिए दो बार भोजन करना ही अच्छा है। दिन में दो बार भोजन करने की प्रणाली से कभी कभी कठोर शारीरिक परिश्रम करने-वालों को भी लाभ होते देखा गया है। दौड़ने, घूँसा मारने, कुश्ती लड़ने तथा अन्य बलशाली खेलों में दो समय के भोजन से प्रायः लाभ होते देखा गया है। यह प्रश्न पूर्णतया भूख का

प्रश्न है। यदि आपको प्रातःकाल के समय भूख नहीं लगती तो दो बार ही भोजन किया करो। प्रातःकाल के समय फल खाने से और भी अधिक लाभ होते देखा गया है।

मिताहार

प्रतिदिन करने योग्य भोजन की संख्या से ही यह प्रश्न भी सम्बन्धित है कि भोजन किस प्रकार किया जावे। आजकल अनेक व्यक्ति पेट से अधिक खाने की ग़लती किया करते हैं। इस बात का कोई प्रश्न नहीं है कि अनेक व्यक्ति मूर्च्छित से होकर भोजन करते हैं। उनकी शक्ति अत्यधिक खाये हुए भोजन को पचाने में ही व्यय हो जाती है। वे मानसिक अथवा शारीरिक कार्य करने योग्य नहीं रहते। वे तो वास्तव में 'भोजन भट्ट' होते हैं। अधिक भोजन करना भी एक रोग है। यह कम बार भोजन करने और भोजन को पूर्वोक्त रीति से ख़ूब चबाने से अच्छा हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति को प्रतिदिन दो बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि अत्यधिक खानेवाले यदि प्रतिदिन दो बार भोजन करते हैं तो दैनिक एक बार भोजन करके उतना नहीं खा सकते; यदि वे दैनिक तीन बार खाते हैं तो दो बार खाने में उतना नहीं खा सकते; क्योंकि उस समय उनका उदर अधिक स्वाभाविक दशा में होता है। एक दूसरा उपाय किसी प्रकार के एक पदार्थ अथवा पूरे भोजन को ही बिना पकाये हुए खाना है। इस प्रकार के भोजन को अत्यधिक परिमाण में नहीं खाया जा सकता। किन्तु स्वाभाविक और फुर्तीला जीवन व्यतीत करनेवाले, विशेष कर अपने अधिकांश समय को घर के बाहिर व्यतीत करनेवाले को भूख की त्रुटि नहीं जान पड़ती और न वह कम ही खाता है। उत्तम सामान्य स्वास्थ्य से भूख खुलकर लगती है।

प्रायः व्यक्तियों के अत्यधिक भोजन करने का कारण खाये हुए भोजन का अयोग्य प्रकार है। यह निश्चय है कि यदि सभी प्रकार के भोजनों को उनकी स्वाभाविक दशा में खाया जावे और वे शरीर को आवश्यकता की पूर्ति पूर्णतया कर दें तो अत्यधिक खाने की प्रवृत्ति कभी न होगी। कठिनता यह है कि भोजन बनाने की आडम्बर-पूर्ण प्रणालो के साधारण उपयोग का भोजनों के पौष्टिक तत्त्व पर इतना अधिक घातक प्रभाव होता है कि स्वस्थ मनुष्य प्रत्येक प्रकार के भोजन के पर्याप्त मात्रा में करने की भूल में अत्यधिक भोजन कर जाता है। मिल का आटा स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है, क्योंकि उसमें गेहूँ के अनेक उपयोगी तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त शाकों के उबालने में उनके अनेक रासायनिक क्षार उष्ण जल में मिलकर निकल जाते हैं। मिल में चावलों को विशेष रूप से सफ़ेद करना, सफ़ेद मैदा का उपयोग, शक्कर को अधिक सफ़ेद बनाना तथा अन्य अनेक प्रणालियों के कारण अत्यधिक भोजन करने की सार्वजनिक प्रणाली चलती जाती है। भोजन में से कुछ तत्त्व निकल जाते हैं, किन्तु शरीर को उन तत्त्वों की आवश्यकता रहती है और योग्य भोजन प्राप्त करने के उद्योग में मनुष्य स्वच्छ किये हुए हानि-प्रद भोजनों को अत्यधिक परिमाण में खा जाता है।

बारहवाँ अध्याय

पथ्य भोजन

पिछले अध्याय में दिये हुए पूर्ण आनन्दपूर्वक भोजन करने के प्रस्ताव से ही यह बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है कि भोजन क्या करना चाहिए। दूसरे शब्दों में वे भोजन खाने चाहिएँ

जिनका पूर्णतया आनन्द लिया जा सके। यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि केवल आरोग्य-जनक भोजन ही खाये जावें। यदि आप एक समय के भोजन में अनेक प्रकार के व्यञ्जन नहीं खाते तो आपको अनेक पदार्थों में से कुछ को पसन्द करने में सुविधा हो सकती है। यह अच्छा है कि भोजन में प्रति दिन प्रत्येक बार परिवर्तन होता रहे, किन्तु व्यञ्जनों की संख्या नहीं बढ़नी चाहिए।

नमक का प्रयोग

हम नमक का सेवन इतने समय से कर रहे हैं, कि हमारे शरीरों को उसका व्यसन पड़ गया है। नमक घरेलू कार्यों के लिए अत्यंत आवश्यक समझा जाता है, अतएव उसको छोड़ने का प्रश्न बिल्कुल व्यर्थ है। तथापि उसका अत्यधिक उपयोग भी, जिसका हमको अभ्यास पड़ गया है, हानिप्रद है। इसका किस प्रकार त्याग किया जावे? यदि हम स्वाभाविक अर्थात् कच्ची दशा में ही भोजन करें तो नमक से सुगमतापूर्वक बचा जा सकता है। किन्तु पकाने से स्वाद इतना अधिक बदल जाता है कि नमक का सेवन आवश्यक हो जाता है। डाक्टर फर्नर मैकफैडेन नमक को मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नहीं मानते; क्योंकि वे अनेक ऐसे व्यक्तियों का उत्तम स्वास्थ्य देख चुके हैं, जो नमक बिल्कुल नहीं खाते थे। किन्तु कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं कि नमक का त्याग करने से स्वास्थ्य को हानि पहुँची है। अतएव यही कहना उचित है कि नमक का प्रयोग प्रायः मनुष्यों को करना चाहिए।

भोजन को निर्वाचित करने की पूरी समस्या योग्य परिमाण में प्रोटीन, कर्बोज अथवा स्टार्च और शक्कर के मिश्रण (Carbohydrates) और चर्बी को प्राप्त करने पर निर्भर है। साथ ही साथ वृद्धि, उत्तेजना और सुधार के लिए विटैमिनों (Vitamins) और

खनिज पदार्थों को ग्रहण करना और शरीर को जीवनशक्ति-युक्त प्रणालियों से स्वस्थ और कार्यशील रखना भी आवश्यक है।

खाद्य पदार्थों का निर्वाचन करने के विषय में पिछली बातों पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। अनेक प्रकार के भोजन परिष्कृत हो होकर मनुष्य के पचाने योग्य नहीं रहे हैं। भोजन के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गेहूँ का आटा है।

खाद्य पदार्थों की स्वाभाविकता

गेहूँ वास्तव में ही पूर्ण भोजन है। इसमें मानव-शरीर के लिए आवश्यक सभी पदार्थ बहुत कुछ मनुष्य-शरीर के जैसे अनुपात में ही होते हैं। आटे को आधुनिक मिलों में शुद्ध स्टार्च के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को निकालने का उद्योग किया जाता है, जिससे आटा स्वाभाविक ही उत्तम, चिकना और श्वेत हो जाता है। मिलवाले तो भी अपने इस उद्योग में पूर्ण सफल नहीं होते। यह अवश्य है कि वे गेहूँ में से उसके उपयोगी अंश को निकालने में बहुत कुछ यहाँ तक सफल हो जाते हैं कि वह जीवन को पुष्ट करने योग्य नहीं रहता। वर्तमान प्रचलित कोष्ठबद्धता के अत्यधिक प्रसार का मुख्य कारण उनकी यह ग़लती ही है। चावल को भूसी को उससे पृथक् करके भी शुद्ध स्टार्च का भोजन बनाया जाता है। चावल में भी शरीर-सम्बन्धी अनेक क्षार होते हैं। आधुनिक बेरीबेरी (Beri beri) रोग पालिशदार चावल के भोजन से ही होता है। बिना पालिशवाले स्वाभाविक चावल के खाने से यह रोग रुककर अच्छा हो जाता है। शक्कर को मिल-द्वारा शुद्ध करने में भी एक प्रकृति-विरुद्ध प्रणाली का उपयोग किया जाता है। अनाज को पीसने तथा अन्य अनेक खाद्य पदार्थों के बनाने में भी यही बात ठीक है। खाद्य पदार्थों को 'शुद्ध करने' की प्रणाली आधुनिक युग का अपराध है। इनके अतिरिक्त हमारे खाद्य पदार्थों में कुछ कठिनता गृहिणी भी उत्पन्न करती है। वह

शाकों तथा अन्य खाद्य वस्तुओं को उबालकर और उनके पानी को निकालकर उनमें से अनेक उपयोगी खनिज पदार्थों को निकाल देती है। निर्माताओं तथा पकानेवालों को उन ग़लतियों के कारण जनता को बहुत भोजन खाने और बहुत व्यय करने पर भी खनिज-क्षारों के सम्बन्ध में भूखा ही रहना पड़ता है।

यद्यपि रोटी को 'जीवन का सहारा' समझा जाता है, किन्तु यदि उसको केवल सफ़ेद मैदा से ही बनाकर उसी के आश्रय पर रहा जावे तो उसको 'मृत्यु का सहारा' कहना भी अनुचित न होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि निर्बल पाचन-शक्ति-वाले कुछ रोगियों को सभी प्रकार की रोटी से बचाया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में वह उदर की रेखाओं और आँतों में प्रायः गड़बड़ी कर देती है। जब इस प्रकार के लक्षण देखने में आवें तो रोटी और विशेष कर ख़मीरी रोटी का खाना बन्द कर देना चाहिए। जब रोटी बिना खमीर के ही बनाई जाती है और ख़ूब चबाई जाती है तो वह कोई हानि नहीं करती। मैदा की रोटी के भूख न लगने पर भी उसके लिए अत्यधिक अभिलाषा पाये जाने के उदाहरण भी हैं। जब व्यञ्जन अनेक प्रकार के तैयार हों और आहारनलिका भी असाधारण रूप से तत्परतापूर्वक कार्य करती हो, तो श्वेत रोटी की इच्छा को बिना किसी हानि के पूर्ण किया जा सकता है। वास्तव में जब एक समय के भोजन में अनेक प्रकार के व्यञ्जन उपस्थित होते हैं तो सफ़ेद रोटी को—यदि वह भूख लगानेवाली हो तो—पर्याप्त मात्रा में लिया जा सकता है। कोष्ठ-बद्धता की चिकित्सा करनेवालों को अपनी आहारनलिका को इस पुस्तक की विधि के अनुसार यहाँ तक बलिष्ठ करना चाहिए कि स़फेद गेहूँ की वस्तुएँ अधिक हानि न पहुँचावें। शरीर में जब तक इस प्रकार के लक्षण मिलें स़फेद रोटी का सेवन किया जा सकता है। तो भी इस बात को स्मरण रक्खो कि जब कभी

कोष्ठ-बद्धता का लेश-मात्र भी चिह्न प्रगट हो भोजन में से सभी प्रकार के सफ़ेद आटे को निकाल देना चाहिए।

खाद्य पदार्थों को यथासम्भव उनकी प्राकृतिक दशा में ही खाना चाहिए। जिन भोजनों को बिना पकाये हुए भी खाकर आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, वे बिना पकाये हुए खाने पर अत्यन्त लाभदायक होते हैं। जब पकाना आवश्यक भी हो तो भोजन को इस प्रकार पकाना चाहिए कि उसमें से प्राकृतिक तत्त्व कोई न निकले। अनेक पदार्थों को उबालने के स्थान में वाष्प में पकाना अथवा भूनना अच्छा रहता है। शाकों को तो अँगारों में भूनकर उनका भर्ता बनाकर खाने से अधिक लाभ होता है, क्योंकि उस स्थिति में वे अपने ही रस में पकते हैं।

अतएव पथ्य भोजन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात पहली तो यह है कि किसी स्वाभाविक खाद्य-सामग्री को पसन्द करना; और दूसरी एक समय के भोजन में अनेक व्यञ्जन न खाना। खाने योग्य उपयुक्त भोजन का प्रश्न प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की दशा और आवश्यकताओं पर निर्भर है।

निस्सन्देह ऊपर छिलकेवाले मेवे और फलपूर्ण भोजन हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से यह बात आदर्श है। किन्तु इस प्रकार के नियमित भोजन से बहुत कम व्यक्तियों का पूर्णतया पेट भर सकता है, अतएव इस प्रणाली को सर्वसाधारण के लिए प्रचलित नहीं किया जा सकता।

प्राकृतिक भोजन

इसके पश्चात् पूर्णता के बहुत कुछ पास पहुँचनेवाली दूसरी खाद्य-सामग्री कच्ची अथवा बिना पकी सामग्री होगी। इसमें उन सब खाद्य-सामग्रियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो

बिना पकाये खाई जा सकती हैं। छिलकेवाले मेवे और सभी प्रकार के फल, शाक भाजी, अनाज और दुग्ध पदार्थ इसी प्रकार की खाद्य-सामग्री है। इस प्रकार के भोजन का अनिश्चित समय तक सेवन किया जा सकता है। जो लोग इस भोजन पर पूर्णतया निर्वाह कर सकें उनके लिए तो यह सर्वथा उपयुक्त है। यह खाद्य सामग्री जीवित है, अतः वह जीवन, शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करती है। पका हुआ भोजन करनेवाले की अपेक्षा कच्चा भोजन करनेवाला बिना वज़न घटे अधिक समय तक उपवास कर सकता है। किन्तु अनेक उदाहरणों में यह खाद्य-सामग्री वज़न अथवा शरीरिक बल को अधिक स्थिर नहीं रख सकती। परिणाम-स्वरूप इसका फल ऐसे व्यक्तियों में भी असन्तोष-जनक होता है, जिनमें पहले-पहल असाधारण लाभ देखने में आया था।

जिन नियमित खाद्य-सामग्रियों को पेट से अधिक खाया जा सकता है, उनमें पहले-पहल कुछ समय तक लाभ देखने में आया करता है। इस कारण नियमित भोजन करने और अपने शरीर की गठन और शक्ति की उन्नति का अनुभव करनेवाले उत्साही लोग इस विचार से अत्यंत प्रभावित होते हैं कि अन्त में उनको एक पूर्ण भोजन मिल ही गया। अपने उत्साह के कारण वे आहार-सम्बन्धी नियमों का पालन इतनी कठोरता से करने लगते हैं कि उसका हानिकारक परिणाम होने लगता है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाला कोई भी भोजन आपकी साधारण शक्ति और वज़न को बनाये रक्खेगा। दूसरे शब्दों में, यदि आपका भोजन उचित है तो आपको स्वयं ही अच्छा मालूम होगा और आप भी दूसरों को अच्छे दिखलाई देंगे। यह एक पूर्ण परीक्षा है और इसके ऊपर पूर्णतया निर्भर रहा जा सकता है।

शाकाहार

सम्भवतः इसके पश्चात् सिफ़ारिश करने योग्य अगली खाद्य-सामग्री निरामिष शाकाहार है। इसके मांस से अच्छा होने के विषय में कोई मतभेद नहीं है, किन्तु इसके मांस से अच्छा होने में यह आवश्यक है कि इससे आप पूर्णतया पुष्ट, फुर्तीले और योग्य हो सकें। शाकाहार से पट्ठे अच्छी क़िस्म के बनते हैं और सहनशीलता बढ़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि मांसाहारी की अपेक्षा स्वस्थ शाकाहारी अधिक समय तक जीवित रहता है; क्योंकि मांसाहारी की अपेक्षा उसके जीवनशक्तियुक्त अंग अधिक समय तक स्वस्थ बने रहते हैं।

तो भी हमको यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि अनेक व्यक्ति केवल शाकाहार से ही न तो अपने वज़न और न शक्ति को ही बनाये रह सकते हैं। आप जिस शाकाहारी के चर्म को श्वेत, ओठों को फीका तथा शरीर को पतला और दुर्बल देखें तो समझ लें कि उसका शाक-भोजन उसके अनुकूल नहीं हो रहा है। इस प्रकार के व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार के मांस भोजन की आवश्यकता समझनी चाहिए। अतएव अनुकूल आहार के अन्वेषण के लिए आपको अपनी व्यक्तिगत दशा और आवश्यकताओं का अध्ययन सावधानी से करना चाहिए। शारीरिक दशा तथा आवश्यकता का अध्ययन करने के पश्चात् आपको भोजन-सम्बन्धी कुछ प्रयोग करने चाहिएँ और फिर आपको निश्चित करना चाहिए कि कौन सा भोजन आपको सबसे अधिक अनुकूल होगा।

वास्तव में अपने सङ्गी-साथियों से भिन्न प्रकार का भोजन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। भले ही आपको मेवा और फलों के आहार, अथवा बिना पके भोजन के आहार, में पर्याप्त उत्साह हो किन्तु जब आपके कुटुम्बी जन और मित्र लोग दूसरा भोजन

कर रहे हों तो किसी-किसी समय दूसरे प्रकार का भोजन करने की इतनी प्रबल इच्छा हो आती है कि उसको दमन करना कठिन हो जाता है। परिणामतः आपको भी वह भोजन करना ही पड़ेगा जो आपके अन्य साथी करते हैं।

मनुष्य अपने भोजन में बिना विशेष परिवर्तन के भी स्वस्थ रह सकता है। यह निश्चय करने के लिए कि कोई व्यक्ति वास्तव में हो रोगी है अथवा उसको किसी विशेष प्रकार के भोजन की आवश्यकता है, उसको कुछ दिनों तक निबाह कर गरिष्ठ भोजन देना चाहिए। उसका अच्छा परिणाम होने और उससे साधारण स्वास्थ्य बना रहने पर यह विश्वास किया जा सकता है कि उक्त व्यक्ति सब कहीं पर्याप्त पुष्टिकर भोजन कर सकता है।

अपथ्य भोजन

तो भी भोजन के निर्वाचन में कुछ बुद्धि आवश्यक है। कुछ खाद्य सामग्रियों का तो त्याग कर देना ही अच्छा है। उदाहरणार्थ, सफ़ेद मैदा की सभी खाद्यसामग्रियों का त्याग कर देना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि सफ़ेद मैदा की केवल रोटी का ही नहीं, वरन् उसके बने बिस्कुट, डबल रोटी, मिठाई और पकवानों को भी नहीं खाना चाहिए। किन्तु यदि कोई व्यक्ति नित्य मांस खाता है तो सफ़ेद मैदा उसको शाकाहारी की अपेक्षा इतनी हानि नहीं करेगा। एक प्रयोग में सफ़ेद मैदा से होनेवाली हानि का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। एक व्यक्ति ने दो सप्ताह तक उपवास करके उसके परिणाम की परीक्षा की। उपवास से पूर्व उसने अपना वज़न ले लिया था। उपवास के बीच में भी वह बार-बार अपना वज़न लेता रहा। उपवास के अन्त में भी उसने अपना वज़न लिया। उसने प्रत्येक परिस्थिति में अपने वज़न को निश्चित कर लिया। इसके बहुत समय के पश्चात् उसने दो सप्ताह तक सफ़ेद मैदा के भोजनों को खाकर उनकी परीक्षा की। वह रोटी, डबल

रोटी आदि के रूप में स़फ़ेद मैदा को खाता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि इस बार उसका वज़न उपवासकालीन वज़न से कम हो गया। इससे सिद्ध हुआ कि उसके विषय में स़फ़ेद मैदा भोजन के रूप में हानिकर सिद्ध हुआ।

हरे शाक अत्यन्त उपयोगी भोजन होते हैं। यदि सम्भव हो तो इस प्रकार का भोजन दैनिक खाना चाहिए। ग्रीष्म-ऋतु में तो इसका सेवन अवश्य करना चाहिए। वे रक्त को शुद्ध करने में अत्यन्त उपयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त खनिज क्षार भी उनमें पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस विषय में अनेक वस्तुओं को ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु जैतून का तेल और नींबू के रस का मिश्रण बहुत अच्छा रहता है। सिरके का सेवन नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि एक तो यह शुद्ध कम मिलता है, दूसरे यह पता नहीं चलता कि इसमें कौन से रासायनिक पदार्थ हैं। इस भोजन में नींबू का रस सिरके से तो कहीं अच्छा होता है। पितरसेली (Celery), लेटचूस नामक दूधिया पौदा, टिमाटर, प्याज़, लोटपुटिया, राई का शाक, ककड़ी, खीरा तथा इस प्रकार के अन्य शाक इस उद्देश्य के लिए अच्छे होते हैं। बथुआ, पालक आदि पककर अत्यन्त लाभकर सिद्ध होते हैं।

फलाहार

फल सभी प्रकार के अच्छे होते हैं। पित्त प्रकृतिवाले के लिए तो वे अत्यन्त उपयोगी होते हैं। जिन व्यक्तियों को पेट के ठीक करने तथा भूख लगाने के लिए उपवास अनुकूल नहीं होता उनको फल का उपवास बहुत लाभप्रद होता है। ताज़े फलों में सन्तरे, अंगूर, विलायती मकोय (शाहदाना), सेव तथा ऋतु के अन्य फल बड़े उपयोगी होते हैं। इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि उन फलों को उनकी पूर्णतया स्वाभाविक दशा में ही

खाना चाहिए। वे ठीक-ठीक पक गये हों और उनमें शक्कर न मिलाई जावे। पर्याप्त फल और खाने योग्य कच्चे शाक दोनों मिलकर भोजन का काम अच्छी तरह चला देते हैं।

इस बात को भी स्मरण रखना चाहिए कि खट्टे फल पेट को अच्छा साफ़ करते हैं। वे मुँह, दाँतों और आहारनलिका को स्वस्थ रखते हैं। वास्तव में खट्टे फलों, विशेषकर सन्तरे, के सेवन से मुख, दाँत तथा पाचन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ बहुत कुछ दूर हो जाती हैं। मुँह का स्वाद बिगड़ने पर जब कभी भी सन्तरे की एक फाँक खाई जाती है तो वह उसी समय तबियत ठीक कर देती है; यद्यपि यह चिह्न उदर को किसी प्रकार के खट्टे फल की आवश्यकता के भी हैं। यदि इस प्रकार के फलों को खाने की अत्यन्त अभिलाषा होती है तो इस प्रकार के फलों की बहुत आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के मामलों में दो समय के भोजन के बीच में न खाने के नियम का ध्यान नहीं करना चाहिए। जब कभी आपको खट्टे फलों की बड़ी भारी इच्छा हो तो आप उनका सेवन भोजन के बीच के समय में भी कर सकते हो। वास्तव में ऐसी दशा में कुछ घण्टों पूर्व खाये हुए भोजन को पचाने में उनकी बड़ी भारी आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी सायंकाल के भोजन के पश्चात् रात्रि में जाग जाने पर मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है। ऐसे अवसर पर थोड़ा सा जल तथा कुछ खट्टे फल अत्यन्त लाभकर सिद्ध होते हैं। उनको खाकर मुँह में तब तक घोलते रहना चाहिए, जब तक वे मुँह के प्रत्येक भाग में न पहुँच जावें।

जिस समय पाचन-सम्बन्धी लेशमात्र कठिनता का भी अनुभव हो तो प्रत्येक समय के भोजन में थोड़े-थोड़े फल भी लेने चाहिएँ। यदि एक समय भोजन न करके आप खट्टे फलों का ही सेवन करो तो यह भी अच्छी प्रणाली है।

इस बात को स्मरण रक्खो कि सन्तरा, नींबू तथा अन्य अधिक खट्टे फल मुँह और दाँतों को अच्छा साफ़ करते हैं। उनको खाकर कुल्ला नहीं करना चाहिए। अतएव सन्तरा बार-बार खाना सदा ही उपयोगी होता है। उनको सोते तथा जागते समय खाने से भी अत्यन्त लाभ होता है।

मांस के स्थानापन्न खाद्य पदार्थ

मांस का स्थान किस खाद्य पदार्थ को देना चाहिए? इस विषय में अधिक प्रोटीनवाले उन सब खाद्य पदार्थों को ग्रहण करना चाहिए जो हृदय-ग्राही और आरोग्यजनक हैं और जिनको देखने से ही भूख लग आवे। इस प्रकार के खाद्य पदार्थों का वर्णन नीचे किया जाता है।

सभी प्रकार के अनाजों में प्रोटीन पर्याप्त होती है। उनका साबित अथवा दली हुई दोनों ही दशाओं में सेवन किया जा सकता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि साफ़ किये हुए मैदे और पालिश किये हुए अनाज का सेवन न किया जावे। रोटी किसी भी अनाज की अच्छी रहती है। गत महायुद्ध में एक 'युद्ध की रोटी' का उपयोग किया जाता था। वह अत्यन्त लाभदायक होती थी। योरप में इस प्रकार की अन्य अनेक रोटियाँ भी प्रचलित हैं।

सभी प्रकार की फलियाँ मांस की अच्छी स्थानापन्न हो सकती हैं। ये हृदय-ग्राही भोजन होती हैं। इनका सेवन करने और उनको पचाने से शरीर में स्फूर्ति आती है। सूखी मटर के विषय में भी यही कहा जा सकता है। इन सब वस्तुओं में प्रोटीन अत्यधिक मात्रा में होती है।

मेवे भी मांस का काम अच्छा दे सकते हैं, यद्यपि निर्बल पाचन-शक्तिवाले को वे गरिष्ठ सिद्ध होते हैं। उनको केवल

भोजन के साथ और वह भी कम परिमाण में खाना चाहिए। बादाम बड़ा अच्छा भोजन है। उसके खाने में बड़ी ग़लती यह है कि उसको दोनों समय के भोजन के बीच में न खाकर भोजन के साथ खाना चाहिए। बादाम-रोग़न और बादाम का मक्खन भी बड़े उपयोगी होते हैं। यदि मेवे सुगमता से पच जावें तो वे अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होते हैं।

अनेक व्यक्ति अंडों को मांस में नहीं गिनते; किन्तु यह बड़ी भारी ग़लती है। अंडा अत्यन्त पौष्टिक होता है। उसमें चूना, गन्धक, लोहा, स्फुर (फास्फोरस), प्रोटीन तथा चर्बी के अतिरिक्त कई खनिज क्षार अधिक मात्रा में होते हैं।

दूध के अत्यन्त पौष्टिक भोजन होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वह भी मांस का ही भाई है। पनीर तथा दूध की अन्य वस्तुएँ मांस की अच्छी स्थानापन्न हैं। मक्खन विशुद्ध चर्बी है। यह प्रोटीन को देने के विषय में मांस की बराबरी नहीं कर सकता, यद्यपि यह मांस के चर्बीवाले भाग का स्थान सुगमता से ले सकता है। पनीर को भोजन के अन्त में सेवन करना चाहिए। इसका सेवन करने से भोजन अच्छा पचता है।

मट्ठा मांस का उत्तम स्थानापन्न है, किन्तु मट्ठा वही अच्छा होता है जो दही को बिलोकर मक्खन निकालने से बनता है। शरद् ऋतु में झाग उठाकर बनाया हुआ दूध भी अत्यन्त गुणकारी होता है, किन्तु उसके गुण ताजे़ दूध से अधिक नहीं होते। यदि आप दैनिक दो सेर के लगभग मट्ठा पी सकते हैं तो आपको मांस की आवश्यकता बिल्कुल न पड़ेगी।

———

तेरहवाँ अध्याय

संक्रामक कोष्ठबद्धता को दूर करनेवाले खाद्य पदार्थ

लगभग सभी मानवीय रोग कोष्ठबद्धता से आरम्भ होते हैं। इसके अपवाद बहुत थोड़े हैं, अधिक नहीं। कोष्ठ-बद्धता जीवन-शक्ति की भयानक शत्रु है। कोष्ठबद्धता के रोगी में शुद्ध रक्त का अस्तित्व असम्भव है। यदि उच्च कोटि की जीवन-शक्ति-सम्बन्धी स्फूर्ति के लिए आवश्यक तत्त्वों को रक्त-प्रवाह में सम्मिलित करना है तो आहारनलिका के कार्य को फुर्ती से कार्य करना आवश्यक है। यदि भोजन-सम्बन्धी गम्भीर कारण न हों तो इस प्रकार के कष्ट को उन उपायों से दूर किया जा सकता है जिनका वर्णन आहारनलिका को शुद्ध और बलिष्ठ करने के वर्णनवाले छठे अध्याय में किया गया है। किन्तु जब यह रोग वर्षों तक बना रहकर संक्रामक हो जाता है तो इसके लिए पूर्वोक्त उपायों के साथ-साथ भोजन-सम्बन्धी विस्तृत प्रयोगों का करना भी आवश्यक होता है।

कोष्ठबद्धता का सीधा कारण उदर और आँतों की पेशियों की दीवारों (muscular walls) का ढीला तथा निर्बल पड़ जाना है। ठीक-ठीक पचने, ग्रहण करने और निकालने के लिए पेशियों की इन रचनाओं का कुछ बलिष्ठ होना आवश्यक है। आँतों में भोजन के एकत्र हो जाने से वे निर्बल पड़ जाती हैं। हमारे भोजन अत्यधिक सुन्दर होने लगे हैं। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, वे प्राकृतिक दशा में नहीं खाये जाते। उनको ऐसी मिलों में तैयार किया जाता है जहाँ उनमें से केवल अनेक पौष्टिक तत्त्वों को ही नहीं निकाल दिया जाता, वरन्

उस भोजन को अत्यन्त बारीक भी कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में भोजन के वे सब तत्त्व निकल जाते हैं जो आँतों के लिए उपयोगी होते हैं। भोजन तैयार करने की अपनी प्रणाली से हमको भोजन को चबाने का परिश्रम नहीं करना पड़ता। भोजन को शीघ्रतापूर्वक निगल जाने की प्रकृति से शरीर के बल और दाँतों की कठोरता पर तो प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही जीवन-शक्ति निर्माण की सम्भावनाओं पर भी पड़ता है।

पेय पदार्थों का सेवन

अनेक व्यक्तियों को तरल पदार्थों का कम सेवन करने से कोष्ठबद्धता हो जाया करती है। स्त्री और पुरुष पर्याप्त जल नहीं पीते। प्राय: हाथ-पैर न हिलाने की प्रकृति के कारण जल पीने की प्रकृति कम हो जाती है। अध्याय छ: में कोष्ठबद्धता को दूर करने में जल की आश्चर्यजनक शक्ति का वर्णन किया गया है। अच्छा तो यह है कि दिन भर में सेवन करने योग्य जल के परिमाण को स्मरण रक्खा जावे। यदि आप भोजन के समय के बीच में स्वतन्त्रतापूर्वक जल नहीं पीते तो आपको भोजन के साथ ही आवश्यक जल पी लेना चाहिए। सम्भवत: चाय और क़हवा पीनेवाले इस आवश्यकता के महत्त्व का अनुभव करते हैं। किन्तु इन नशीली वस्तुओं का सेवन हानिकर होता है। चाय और क़हवा नाड़ियों और स्वास्थ्य दोनों को ही हानि पहुँचाते हैं। इन नशीली वस्तुओं के अतिरिक्त भोजन के समय मट्ठे आदि किसी भी पेय पदार्थ का सेवन किया जा सकता है। फलों के रस का सेवन प्राय: अच्छा होता है। इस विषय का वर्णन पूर्व अध्याय में पर्याप्त किया जा चुका है।

कोष्ठबद्धता-निवारक पदार्थ

भोजन का आहार-पाचन-प्रक्रिया पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। सफ़ेद रोटी और सफ़ेद मैदा के व्यञ्जन कोष्ठबद्धता के

भयङ्कर कारण होते हैं। इस हानिप्रद पदार्थ में शरीर को आवश्यक जीवन तथा जीवन-शक्ति देने योग्य तत्त्व नहीं होते; क्योंकि एक ओर तो उसको मिल में पीसने में उसका छिलका उतर जाता है, दूसरे उस गेहूँ में से जीवन-कीटाणु भी निकल जाते हैं। भूसी में गेहूँ के छिलके के बारीक-बारीक टुकड़े होते हैं। ये आँतों के कार्य को बल पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। अतएव भूसी के निकल जाने पर मैदा केवल हानिकर हो रह जाता है।

कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि भोजन में से सफ़ेद मैदा को निकाल दिया जावे। चने, लाल गेहूँ, राई, जई, जौ आदि का भोजन अच्छा भोजन होता है। इससे भोजन में बिना कुछ और परिवर्तन के कोष्ठबद्धता स्वयं ही दूर हो जाती है।

जिस पदार्थ को भोजन में छिलका अथवा भूसी के रूप में व्यर्थ समझा जाता है, पाचन-क्रिया तथा आँतों की गति को अधिक करने में वही अधिक उपयोगी होता है। शाकों में पाये जानेवाले तन्तु अत्यन्त उपयोगी होते हैं। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि मनुष्य को भोजन के गूदों को न खाकर उसके रस को ही खाना चाहिए। किन्तु यह गूदा अथवा तन्तु-पदार्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त बालू, कोयले का शुद्ध तेल नाम का एक खनिज पदार्थ अथवा साधारण काली कोच—जिसका सेवन सुखाकर किया जाता है—भी आहारनलिका में बिना किसी परिवर्तन के अत्यन्त लाभ पहुँचाते हैं। बालू का सेवन करते समय उसके दानों को पानी की लहरों में गोल और चिकना कर लेना चाहिए। तेज़ किनारे-वाले दानों का सेवन मत करो। ऐसे पदार्थों का थोड़ा सा अंश भी रेचक सिद्ध होता है। अपना थोड़ा प्रभाव दिखलाकर ऐसी औषधि का रेचकपन स्वयं ही दूर हो जाता है। ये औषधियाँ

रोचक नहीं होतीं। इनका उपयोग अस्थायी रूप से रेचन-कार्य के लिए ही करना चाहिए।

गेहूँ, राई, जई और जौ जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार के अनाजों को बहुत समय तक गरम जल में तब तक उबाले, जब तक वे नरम न हो जावें। उस समय वे केवल अत्यन्त पौष्टिक ही नहीं हो जाते, वरन् कोष्ठ-बद्धता को दूर करने में भी अत्यन्त उपयोगी होते हैं। उनका सेवन उनकी प्राकृतिक दशा में करना सबसे अच्छा होता है। उनको फल, अथवा क्रीम (मलाई) अथवा किसी अन्य वस्तु के साथ उबालने की अपेक्षा कच्चे ही खाना अधिक उपयोगी है। दलकर अथवा पीसकर उनको अंजीरों, खजूरों, थोड़ी चीनी अथवा शहद के साथ खाया जा सकता है। इस प्रकार का थोड़ा भोजन भी प्रतिदिन करने से कोष्ठ-बद्धता को दूर करने में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है।

अनेक प्रकार के रायतों से केवल नाड़ियों को ही भोजन नहीं मिलता, किन्तु वे मृदु विरेचक भी होते हैं। टिमाटर, प्याज, पितर सेली, ककड़ी, खीरा, फूट आदि शाकों को या तो कच्चा ही खाना चाहिए अथवा उनको बिना उबाले ही चटनी या रायता बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी पकाये हुए शाक भी लाभदायक होते हैं।

फलों में अधिक रेचक गुण होता है। उनका सामान्य स्वास्थ्य-निर्माण के लिए स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार के रोग में तो उनका विशेष रूप से सेवन करना चाहिए। यद्यपि फल सभी अच्छे होते हैं किन्तु आहारनलिका की फुर्ती को बढ़ाने के लिए सेव, सन्तरे, ग्रेप-फ्रूट, आड़ू, पेवँदी बेर, अंगूर और अनेक प्रकार के फल विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। आलू बुखारे और अंजीर विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। नींबू, सन्तरे और ग्रेप-फ्रूट जैसे खट्टे फल अपनी

उत्तेजक प्रकृति के कारण ही उपयोगी नहीं होते वरन् ये रोग-निवारक भी होते हैं।

पनीर कोष्ठवद्धता करनेवाला है। अतएव पनीर और उसके सभी मिश्रणों का त्याग करना चाहिए। पालिश किये हुए चावल का भी त्याग कर देना चाहिए। साबूदाना भी कोष्ठबद्धता करनेवाला है। शक्कर सफ़ेद न लेकर लाल लेनी चाहिए। अच्छा तो यह है कि शक्कर का बिल्कुल त्याग करके शहद का ही सेवन किया जाय।

दूध को जब भोजन के साथ सेवन किया जाता है तो वह प्रायः क़ब्ज़ करता है। केवल दूध का भोजन करने से क़ब्ज़ नहीं होता, यद्यपि आरंभ के कुछ दिनों में उससे भी क़ब्ज़ देखने में आता है। किन्तु जब दूध का सेवन सामान्य भोजन के साथ किया जाता है तब वह कुछ क़ब्ज़ करता है। यदि रोगी को दूध क़ब्ज़ करे तो उसको मट्ठा अथवा झागदार दूध देना चाहिए।

कोष्ठबद्धता-निवारक व्यायाम

अनेक व्यक्तियों की कोष्ठबद्धता का कारण पेशियों की निर्बलता और त्रुटिपूर्ण रक्त-संचार होता है। इस प्रकार की निर्बलता का कारण शारीरिक श्रम न करना है। अतएव क़ब्ज़ दूर करने के लिए किसी प्रकार का भी पेशियों का व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम का आहारनलिका पर सीधा यन्त्रीय प्रभाव पड़ता है। पेट की पेशियों के सिकुड़ने और शरीर के झुकने आदि से पाचक अंगों की क्रिया पर दबाव पड़ता है। इसी कारण टहलना इस रोग को दूर करने में अत्यन्त उपयोगी है। टहलने में प्रत्येक पग का पाचन-क्रिया पर सीधा प्रभाव पड़ता है। टहलना जीवनशक्ति-निर्माण में भी लाभदायक है।

आहारनलिका पर प्रभाव डालनेवाले कुछ विशेष व्यायाम भी हैं। आगे और पीछे को झुकने, दोनों करवटों की ओर बारी-

बारी से झुकने तथा धड़ की अन्य भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाओं का इस विषय में अच्छा प्रभाव पड़ता है। वे व्यायाम वास्तव में आन्तरिक अंगों का मर्दन करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिस स्थान पर मल एकत्र रहता है वह भी मला जाता है। इस कार्य के लिए आन्तरिक शक्ति के व्यायाम और दबाव देनेवाली गतियाँ अत्यन्त उपयोगी होती हैं। इस प्रकार के व्यायाम का उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

दाहिनी भुजा को पेट पर रखकर दाहिनी कलाई को बायें हाथ से पकड़ लो। अब दोनों हाथों की शक्ति से एक क्षण के लिए पेट को अन्दर की ओर दबाओ। फिर उसको ढीला छोड़ दो और फिर दबाओ।

इसी व्यायाम को करते समय दाहिने तथा बायें घुटनों को क्रमश: एक-एक करके अत्यन्त वेग के साथ ऊपर को उठाओ। और पूर्वोक्त प्रकार से दोनों हाथों से पेट को दबाओ।

यह व्यायाम अनेक रोगियों को अत्यन्त लाभकर सिद्ध हो चुका है। शरीर के ऊपर के भाग के अन्य व्यायाम भी आन्तरिक अंगों में लाभप्रद सिद्ध होते हैं; क्योंकि उन सब क्रियाओं से आहार-नलिका की फुर्ती बढ़ती है।

इस प्रकार के व्यायाम के साथ-साथ उदर-प्रदेश का मर्दन करना और उसमें ज़ोर से मारना भी लाभकारी होता है। मर्दन गहरा होना चाहिए। मर्दन करते समय मुट्ठियाँ बन्द रहें। इस क्रिया में हाथों को घड़ी की सुइयों के समान घुमाना चाहिए अर्थात् हाथों को दाहिनी ओर को घुमाते हुए नीचे लाना चाहिए। फिर बाईं ओर से ऊपर को लाकर उसी प्रकार दाहिनी ओर से नीचे लाना चाहिए। इसी प्रकार बिना ज़ोर दिये हुए पेट को मलना चाहिए। अथवा मारने की चिकित्सा यह है कि पेट को दोनों हाथों से बारी-बारी से, थपथपाने के ढङ्ग से, पीटना चाहिए। हाथ

की मुट्ठियों से मुक्के मारने का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। दोनों मुट्ठियों से बारी-बारी से क्रमशः सारे पेट पर मुक्के मारना चाहिए। यह आपकी दशा के अनुसार नम्रता अथवा कठोरता पूर्वक किया जा सकता है। आँतों को बल पहुँचाने का यह अमूल्य और प्रभावशाली साधन है।

रेचक प्रयोग

रेचक औषधियाँ कभी नहीं लेनी चाहिएँ। उपर्युक्त साधारण कार्यों से रेचन-कार्य अपने आप ही हो जाता है। रेचक औषधियाँ आँतों की दीवारों और पास के पट्ठों से पानी निकालती हैं, जिससे रोगी की दशा और भी बिगड़ जाती है। जो लोग क़ब्ज़ की चिकित्सा के अभ्यासी हो गये हैं, धीरे-धीरे उनको भी इसकी हानि का पता चलता जाता है। यदि कोई रेचक औषधि लेनी ही पड़े और खनिज तेल का उपयोग न किया जा सके तो पिसा हुआ साधारण साँभर नमक अच्छी औषधि सिद्ध होता है। एक चमचा भर नमक को एक गिलास पानी में मिलाकर पी जाओ। इसका रेचक प्रभाव मृदु होगा। अथवा प्रतिदिन दो या चार चमची भूसी एक गिलास जल के साथ पी लिया करो। इस भूसी को रसों आदि अथवा आटे तक में मिलाकर रोटी में खाया जा सकता है। जैतून के तेल का भी स्वतन्त्रता-पूर्वक सेवन करना चाहिए।

तात्कालिक लाभ के लिए ऐनीमा अत्यन्त उपयोगी होता है। किन्तु नियमित रूप से इसको भी नहीं करना चाहिए। उसके ऊपर निर्भर नहीं हो जाना चाहिए। इस विषय में स्वाभाविक कार्य ही उचित होता है, जो उपरोक्त वर्णन किये हुए पथ्य भोजन, व्यायाम और पर्याप्त जल से कराया जा सकता है। ऐनीमा आदि को तो अत्यन्त आवश्यक होने पर ही लेना चाहिए। ऐनीमा

की सामग्री प्रत्येक घर में होनी चाहिए। इसकी आवश्यकता बड़े से बड़े रोगों तक में पड़ जाती है।

ऐनीमा अथवा नीचे की आँत को धोने की प्रक्रिया कभी-कभी हानि भी कर जाती है। ऐसा अनुभव किया गया है कि इससे किसी-किसी की नीचे की आँत चौड़ी हो जाती है और उसकी पेशियाँ निर्बल पड़ जाती हैं। उष्ण ऐनीमा के विषय में यह बात प्रायः सत्य हो जाया करती है। ठण्डे ऐनीमा से कम हानि होती है। अत्यन्त शीतल ऐनीमा तो आँतों को सङ्कुचित तथा बलवान् करके अत्यन्त लाभ करता है। किन्तु ठण्डा ऐनीमा आँतों की सफ़ाई कम करता है। प्रायः तटस्थ तापमान अथवा शरीर के तापमान का ऐनीमा अधिक उपयोगी होता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति इस चिकित्सा को भी पर्याप्त रूप में कर चुका है तो उसको ठण्डे ऐनीमा को पर्याप्त बलवान् बनाकर उसका सेवन करना चाहिए। यदि ठण्डे पानी से पेट में ऐंठन होने लगे तो जल के तापमान को थोड़ा बढ़ा लेना चाहिए।

ऐनीमा के लिए शुद्ध जल लेना अच्छा होता है। रोग की दशा में आँतों को तुरन्त साफ़ करने के लिए साबुन के पानी का उष्ण ऐनीमा लेना चाहिए, किन्तु इस प्रयोग से उदर के स्वाभाविक तेल निकलकर आँत उत्तेजित हो जाती है। आँतों को अत्यन्त ठण्ड लग जाने अथवा इतनी अधिक सूजन अथवा भड़क होने पर कि रक्त के दस्त आने लगें नमक के पानी का ऐनीमा अधिक उपयोगी होता है। नमक के पानी के लिए एक सेर पानी में एक पूरा चम्मच साँभर नमक अथवा चार सेर वाले ऐनीमा के लिए चार सेर पानी में चार चमची नमक डालना चाहिए। अनेक पुरुष ग्लैसेरीन बतला दिया करते हैं, किन्तु इसका उपयोग कम करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति इन उपायों से दृढ़चित्तता से काम लेगा तो भारी से भारी क़ब्ज़ भी दूर हो जावेगा। कुछ रोगियों को तो उपर्युक्त उपायों में से कोई एक उपाय सन्तोषजनक लाभप्रद सिद्ध होगा। किन्तु संक्रामक कोष्ठबद्धता में एक उपाय पर निर्भर न रहकर उपर्युक्त सभी भिन्न-भिन्न प्रकार के उपायों से काम लेना चाहिए।

चौदहवाँ अध्याय

रक्त-शुद्धि

यदि कोई व्यक्ति अपने रक्त को पूर्णतया शुद्ध रख सके तो उसके शरीर में किसी भी रोग की उत्पत्ति असम्भव हो जावे। रक्त ही जीवन है। आपके सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगानेवाले रक्त के प्रभाव द्वारा आप जैसे कुछ हो वही आप हो।

आहारनलिका की गति

शुद्ध रक्त का पर्याप्त परिमाण में मिलना सबसे प्रथम ठीक-ठाक पाचन-क्रिया पर निर्भर है। पाचन के साथ ही साथ भोजन ऐसा स्वाभाविक होना चाहिए, जिसमें शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्त्व हों। इसके पश्चात् दूसरी महत्त्वपूर्ण बात वे रासायनिक परिवर्तन हैं, जो इस जीवनदाता तरल पदार्थ में फुप्फुसों से जाते समय होते हैं। इसके पश्चात् इस जीवन-स्रोत की शुद्धि उन भिन्न-भिन्न अंगों पर निर्भर है, जिनका काम शरीर का मल निकालना है; अर्थात् ये अङ्ग रक्त में से अनेक प्रकार के व्यर्थ पदार्थों और विषों को निकालते हैं। अब आप इसको रक्त-शोधन-प्रणाली कह सकते हैं। रक्त

में से इन व्यर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों का निकलना शुद्ध करनेवाले अङ्गों के ठीक-ठीक कार्य करने पर निर्भर है।

आहारनलिका के महत्त्वपूर्ण कार्य का वर्णन पीछे किया जा चुका है। आप यह कह सकते हैं कि आहारनलिका का नीचे का भाग शरीर की गंदगी का स्थान है। गंदगियों के एक बड़े भाग को यही निकालती है। यह कई बार अनुभव किया जा चुका है कि कई-कई दिन तक उपवास करने पर भी शरीर में एकत्र मल दस्त के रूप में बराबर निकलता रहता है। शरीर से इस प्रकार निकलनेवाला कचरा केवल पचने से बचे हुए भोजन का अवशिष्टांश ही नहीं होता, वरन् रक्त में से वे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यर्थ पदार्थ भी निकल जाते हैं जो बाहर निकलने के लिए आहारनलिका में आ जाते हैं। यदि इन व्यर्थ पदार्थों को रक्तावर्त (Circulation) में रहने दिया जावे तो इसका परिणाम अत्यन्त हानिकर हो सकता है। अतएव रक्त-शुद्धि के सामान्य नियम के रूप में आहारनलिका की गति का महत्त्व सबसे प्रथम है।

गुर्दों की गति

इस कार्य की सुविधा के साथ साथ रक्त-शुद्धि में दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य व्यायाम द्वारा ठीक श्वास लेना है। इसके साथ ही साथ यह कहना अत्यन्त उचित है कि वृक्कों (गुर्दों) की भी कुछ क्रिया होनी चाहिए। गुर्दों की क्रिया प्यास को दूर करने योग्य जल को पीने से ही हो जाती है। यह बात स्मरण रखने की है कि वर्तमान जीवन कुछ इस प्रकार का बन गया है कि हम उसमें स्वाभाविक प्यास को आंशिक अथवा पूर्णरूप में बहुत बार मार देते हैं। ठाली बैठे के बहुत कार्य तो ऐसे हैं, जिनमें ध्यान लग जाने से प्यास लगने पर उसकी चिन्ता नहीं की जाती। इस ग़लती को बहुत समय तक करते रहने से बिना पानी के बहुत देर तक बने रहने का अभ्यास पड़ जाता है; परिणाम-स्वरूप उससे

स्वाभाविक तृषा बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। ऐसी दशा में तृषा लगाना भी महत्त्वपूर्ण होता है। अपने पास पानी का एक गिलास भरकर रख लो और कभी-कभी उसमें से एक या दो घूँट पी लिया करो। अथवा इस पुस्तक में पीछे वर्णन किये हुए उष्ण जल-पान के प्रयोग को करो। इस प्रणाली से शरीर को गुर्दों के काम करने योग्य पर्याप्त तरल पदार्थ मिल जावेगा।

रक्त-शुद्धि का इससे अगला साधन इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसपर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। वह साधन चर्म की मल-निर्यास-प्रणाली है। मल-निर्यास के इस साधन पर हमारा अधिक शासन है, साथ ही इस पर अधिक सुगमता से प्रभाव डाला जा सकता है। चर्म निस्सन्देह मल के बड़े भारी परिमाण को अपने अन्दर से निकालता है। इस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं है। स्नान के समय एक मोटे तौलिया से बदन पोंछने से पर्याप्त मल निकल जाता है। चर्म के कार्य को बल पहुँचाने के अनेक उपाय हैं। रक्तशुद्धि में वे सभी बड़े भारी उपयोगी हैं।

शरीर की सूखी मालिश (मर्दन स्नान)

चर्म की रचना को समुन्नत करने और उसकी कार्य-प्रणाली को बल देने के लिए चर्म की सूखी मालिश (रगड़) सब से सरल कार्य है। यह मालिश हाथ की हथेली, एक खुरदरे तौलिया अथवा एक बुरुश के द्वारा की जा सकती है। मालिश द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए चर्म को शरीर के प्रत्येक भाग में तब तक मलना चाहिए जब तक उसका रङ्ग पलटकर वह चमकने न लगे। जिनकी खाल खुरदरी अथवा मुहाँसों आदि से ढँकी होती है, उनको तो इससे बहुत लाभ होता है। इस कार्य में ब्रुशों का उपयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अत्यन्त खुरदरे ब्रुशों से काम न लिया जावे, अन्यथा चर्म में

खरौंच पड़ जावेंगे। कोमल और सुन्दर चर्मवाले इस प्रकार की कठोर चिकित्सा को सहन नहीं कर सकते। चिकनी और अधिक मोटी खालवालों के लिए भी यह चिकित्सा कठिन है। अनेक व्यक्तियों को तुर्की स्नान (Turkish Bath) की सूखी तौलिया बहुत अच्छा काम देती है। यदि चर्म और भी कोमल है तो हाथ की दोनों हथेलियों से ही काम लेना पर्याप्त है। मालिश के अभ्यासी होने पर आप कुछ कठोर ब्रुशों को भी सहन करने लगेंगे। कठोर ब्रुशों का सेवन तभी करना चाहिए जब वे सहन किये जा सकें। आपको यह भी अनुभव होगा कि आपके इस चिकित्सा के अभ्यस्त होते-होते आपका चर्म भी अधिकाधिक कोमल और चिकना होता जावेगा, साथ ही वह फुर्तीला भी अधिक हो जावेगा। इस सूखी मालिश को व्यायाम के पश्चात् प्रति दिन प्रात:काल के समय करना चाहिए। यदि आप ठण्डा स्नान करें तो उसको मालिश के पश्चात् करना चाहिए। पहले व्यायाम, फिर मालिश और फिर स्नान करना चाहिए। मालिश पाँच से लगाकर दस मिनट तक करनी चाहिए। मालिश से कुछ व्यायाम होगा। इससे रक्त-सञ्चार अधिक शीघ्रता से होगा, साथ ही इससे शरीर में वह उष्णता उत्पन्न हो जावेगी जिससे ठण्डा स्नान अच्छा और आनन्ददायक जान पड़ता है।

वायु-स्नान

चर्म की निर्यास प्रणाली को अधिक उत्तम बनाने के लिए वायु-स्नान भी अत्यन्त उपयोगी है। आरम्भिक मनुष्य प्राकृतिक दशा में रहता हुआ कपड़ों से दबा हुआ नहीं था। उसके उपचर्म (त्वचा के वाह्य भाग) के आरोग्यजनक कार्य में बाधा देने-वाली कोई वस्तु नहीं थी। वस्त्र हमारे चर्म को घेरे हुए हैं। वे उसके निर्यास-कार्य में बहुत बाधा पहुँचाते हैं। जितना ही कम वस्त्र हम पहिनेंगे, हमारा उपचर्म उतना ही अधिक कार्य कर

सकेगा। अतएव जब भी सम्भव हो, विशेष कर उष्ण ऋतु में, अपने समस्त वस्त्रों को उतार दो और समस्त शरीर को हवा लगने दो। इससे केवल रक्त ही शुद्ध नहीं होता, वरन् इससे नाड़ी-चक्र पर भी पौष्टिक प्रभाव पड़ता है। मालिश का भी नाड़ियों पर उसी प्रकार पौष्टिक प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि उपचर्म में कई लाख नाड़ी-खात होते हैं। इन नाड़ी-खातों पर उन सब दशाओं का प्रभाव पड़ता है, जिनका प्रभाव चर्म पर पड़ता है, फिर चाहे वह मालिश, वायु-स्नान, शीत-स्नान अथवा अन्य किसी प्रकार का भी स्नान क्यों न हो। अतएव वायु-स्नान का अच्छा पौष्टिक प्रभाव पड़ता है; और इसका 'नाड़ी' के रोगियों को अवश्य ही सेवन करना चाहिए।

सूर्य-स्नान और व्यायाम

चर्म के कार्य की फुर्ती को बढ़ाने और निर्यास-कार्य को अधिक करने के लिए धूप का स्नान भी विशेष रूप से प्रभावशाली होता है। धूप के स्नान से शरीर के समस्त सेलों (Cells) के कार्य पर प्रभाव पड़ने के कारण वह समस्त शरीर के लिए लाभ-प्रद है। उसका रक्तावर्त पर सीधा प्रभाव पड़ता है, जिससे रक्त के लाल कण अधिक बनते हैं। सूर्य उस पृथ्वी की सभी शक्ति और जीवन का केन्द्र है। सूर्य वनस्पति और प्राणी-संसार दोनों में जीवन और जीवन-शक्ति का दाता है। अतएव धूप के स्नान का शरीर पर प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है।

सूर्य की भयंकर शक्ति और उसके शक्तिशाली रासायनिक प्रभाव के कारण धूप-स्नान के विषय में थोड़ी चेतावनी भी दे देनी चाहिए। अत्यन्त गौर वर्ण के उपचर्मवालों को इसके विषय में विशेष रूप से सावधान रहने की आवश्यकता है। काले रंग-वाले व्यक्ति अपने चर्म में पर्याप्त रोग़न होने के कारण धूप के सम्मुख बिना किसी हानि के बहुत देर तक रह सकते हैं, किन्तु

हल्के उपचर्मवाले व्यक्तियों को ग्रीष्म-ऋतु के मध्याह्न की धूप में तब तक अधिक समय तक खुले नहीं रहना चाहिए, जब तक उनको इसका पर्याप्त अभ्यास न हो जावे। लू के भयानक कष्टों को सभी जानते हैं। इससे सूर्य की किरणों के शक्तिशाली रासायनिक प्रभाव का पता चलता है। धूप का स्नान करने में उसका क्रमशः इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास डालना चाहिए कि उपचर्म का रोग़न शरीर की रक्षा कर ले। सूर्य की छोटी अथवा रासायनिक किरणें उष्ण देशों में गोरे लोगों को हानिकर सिद्ध होती हैं। मई, जून और जुलाई में तो सूर्य की किरणों का ठण्डे देशों में विशेष रूप से रासायनिक प्रभाव पड़ता है। वे एक विशेष अवस्था तक ही उत्तेजक होती हैं; किन्तु उस अवस्था से आगे सावधान रहने की आवश्यकता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि काले पुरुष ग्रीष्म-ऋतु में भी मध्याह्न के समय धूप-स्नान कर सकते हैं, किन्तु गोरे लोगों को प्रातःकाल नौ-दस बजे से पूर्व और मध्याह्नोत्तर समय में तीन बजे के पश्चात् ही सूर्य-स्नान अथवा धूप-स्नान कर चाहिए। शरद्-ऋतु में, जिस समय सूर्य की किरणें अधिक तिरछी होती हैं, गोरे लोग भी चाहे जिस समय सूर्य-स्नान कर सकते हैं। शरद्-ऋतु में धूप कम होने के कारण इस ऋतु में सूर्य-स्नान पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

कुछ परिमाण में धूप की आवश्यकता प्रत्येक को पड़ती है। यदि आप प्रतिदिन सूर्य-स्नान नहीं कर सकते तो आपको इस प्रकार के हल्के वस्त्र पहनने चाहिएँ, जिससे सूर्य की किरणें उनको छेदकर उनके अन्दर प्रवेश कर सकें। इस विषय का वर्णन वस्त्र के अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जावेगा।

स्वेद-स्नान

उपचर्म को उत्तेजित करने की इन तीनों प्रकार की प्रणालियों का वर्णन कर चुकने के पश्चात् बलवानों के लिए फुर्तीले व्यायाम से

अधिक प्रभावशाली और कोई बात शेष नहीं रहती। जहाँ तक उपचर्म के कार्य का सम्बन्ध है, अधिक पसीना निकालने के कारण व्यायाम अत्यन्त उपयोगी होता है। आज-कल अनेक व्यक्ति 'अपनी भँवों का पसीना निकालकर रोटी कमाते हैं', जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। यदि आप ख़ूब पसीना निकलने योग्य शारीरिक श्रम नहीं करते तो आपको इस प्रकार के विशेष व्यायाम करने चाहिएँ, जिनसे पसीना ख़ूब निकले और आपके शरीर में शुद्ध रक्त उत्पन्न हो। रक्त को शीघ्रतापूर्वक शुद्ध करने के लिए पुराने ढङ्ग के पसीना लेने से अधिक प्रभावशाली कोई ढङ्ग नहीं है। जो कोई भी शारीरिक कार्य द्वारा प्रतिदिन पसीना ले लेता है और जिसका स्वभाव अन्य बातों में अत्यन्त सन्तोष-जनक है, वह प्रतिदिन पूर्णतया शुद्ध रक्त अथवा उससे मिलती-जुलती दशा का आनन्द ले सकता है।

पसीना लेने के लिए शारीरिक श्रम कैसा भी हो, इसका कोई प्रश्न नहीं है। चाहे वह आजीविका के लिए उपयोगी कार्य हो, अथवा वह कोई ऐसा खेल हो, जिससे गहरा और स्वतन्त्र श्वास आवे और पसीना निकले।

अधिक बलवालों को दूर तक दौड़ना, कुश्ती लड़ना, घूँसेबाज़ी करना, टेनिस अथवा अन्य खेल खेलना उपयोगी होता है। यदि आप अपने रक्त को शरद् ऋतु में शुद्ध करना चाहते हैं तो आपको इस प्रकार के व्यायाम करते समय अधिक पसीना होने के लिए एक गरम बनियान पहिन लेना चाहिए। इस प्रकार का व्यायाम करने के पश्चात् शीघ्र ही शरीर को ठंड नहीं लगने देनी चाहिए।

व्यायाम

व्यायाम अपने रक्त-शोधन के प्रभाव के कारण ही उत्तेजक तथा मलों को निकालनेवाला नहीं होता, वरन् वह शरीर के सभी कार्यों को बल देता है। वह फुप्फुसों तथा गुर्दों के कार्य में भी फुर्ती बढ़ाता

है। इससे शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में भी रक्तावर्त इतना फुर्ती से होने लगता है कि व्यर्थ और मृतक कचरा रक्त में से निकल कर निर्यास के प्राकृतिक मार्गों द्वारा शरीर में से निकल जाता है। शारीरिक कार्यों के बन्द हो जाने की दशा में, जब रक्तावर्त कम फुर्ती से होता है, इस व्यर्थ कचरे का अधिकांश भाग शरीर के पट्ठों में रुककर सेलों के कार्य और शरीर के साधारण कार्य में बाधा पहुँचाता है। व्यायाम के द्वारा किया हुआ प्रबल रक्तावर्त धीरे-धीरे शरीर के सभी पट्ठों को धो डालता है। इस प्रकार यह ऐसी आन्तरिक शुद्धि कर देता है जो अन्य किसी प्रकार से नहीं की जा सकती। पीछे व्यायाम के साथ उष्ण-जल-पान करने के रक्तावर्त में भारी प्रभाव का वर्णन किया जा चुका है, किन्तु व्यायाम का किसी दशा में भी वही परिणाम होता है; अतएव इस कारण तथा पसीना निकालने के कारण रक्त-शुद्धि के सभी उपायों में व्यायाम को सब से अधिक महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए। व्यायाम के बिना कोई पुरुष बराबर स्वस्थ बना नहीं रह सकता। बिना प्रतिदिन पर्याप्त व्यायाम किये कोई स्त्री अथवा पुरुष अन्दर से शुद्ध नहीं रह सकता।

जो पुरुष अधिक व्यायाम करने योग्य बलवान् नहीं हैं, और जो इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक पसीना नहीं निकाल सकते, वे उपचर्म के रोमकूपों की फुर्ती को बढ़ाने के लिए अन्य उपायों से काम ले सकते हैं। वायु-स्नान, मालिश-स्नान और सूर्य-स्नान का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इन साधनों द्वारा पसीने का दृश्य परिणाम न होने पर भी रोमकूप अपना कार्य फुर्ती से करने लगते हैं; क्योंकि साधारण दशाओं में पसीना वाष्प बनकर उड़ जाता है और शरीर गीला नहीं हो सकता। पसीना अत्यन्त अधिक आने पर शरीर का उपचर्म गीला दिखलाई दिया करता है, वायु-स्नान करते समय

बिना पसीना दिखलाई दिये भी चर्म अपने कार्य को फुर्ती से करने लगता है।

भिन्न प्रकार के जल-स्नान

स्नान करने की भिन्न-भिन्न प्रणालियों का शीघ्र मल निकालने पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस उद्देश्य के लिए रूसी तथा तुर्की स्नान प्राय: किये जाते हैं। 'नगर के आस-पास' रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति रूसी और तुर्की स्नान से शरीर को शुद्ध करने और पसीना लाकर रोमकूपों को खोलने के महत्त्व को भली भाँति जानता है। यद्यपि ये स्नान दैनिक रक्तदायक व्यायाम के स्थान में नगण्य हैं, किन्तु इस विषय में तो भी अत्यन्त प्रभावशाली हैं। जो मनुष्य शारीरिक कार्य में अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है, वह तुर्की स्नान के द्वारा उसकी कुछ पूर्ति कर सकता है, यद्यपि इस प्रकार वह बहुत कुछ कर सकता है। रूसी और तुर्की स्नान में सबसे बड़ी बाधा यह है कि उनके स्नानागारों में वायु बहुत कम आती है। शुष्क, उष्ण वायु वाले तुर्की स्नान से वाष्प-स्नानवाला रूसी स्नान प्राय: अच्छा रहता है। निर्बलों के लिए तो वाष्प-स्नान अत्यन्त उपयोगी होता है। यदि कोई व्यक्ति बलवान् है और उसका हृदय भी बलिष्ठ है तो उसको उष्ण वायु के शुष्क कमरे अच्छा लाभ करते हैं। तुर्की स्नान की मालिश आदि भी अत्यन्त उपयोगी होती है।

रूसी और तुर्की स्नानों के रक्त को शुद्ध करने के लाभ को घर पर अन्य प्रकार के स्नानों द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। वाष्प-स्नान अथवा उष्ण वायु के शुष्क स्नान को घर पर भी किया जा सकता है। इन स्नानों के पश्चात् ठंडे पानी में स्पंज को भिगो-भिगोकर बदन को मलना चाहिए।

यदि घर में अनुकूल स्नानागार न हो तो उष्ण जल के स्नान से भी लाभ हो सकता है। मल को उपचर्म के द्वारा निकालने में उष्ण जल अच्छा प्रभाव दिखलाता है। गुर्दों के ऐसे रोगों में, जिनमें गुर्दे अपना काम न कर सकें, प्राय: उष्ण जल के स्नान से ही मनुष्य को जीवित रक्खा जाता है। टब में १०५ से लेकर ११२ अथवा ११५ अंश तक के ऐसे उष्ण जल को भरकर—जिसको सहन किया जा सके—इस जल में दस से लगाकर बीस मिनट तक तब तक रहना चाहिए, जब तक वह जल सहन होता रहे। उचित यह है कि पहले १०२ अथवा १०४ अंश के कम उष्ण जल में प्रवेश किया जावे, फिर उसमें अधिक उष्ण जल मिलाकर उसको १०८, ११२ अथवा इससे भी अधिक उष्ण कर ले। जल के तापमान को नियमित करने के लिए एक स्नान-थर्मामीटर (बाथ थर्मामीटर) को बाजार से अवश्य मोल ले लेना चाहिए। हृदय-रोग के रोगियों और कम जीवनशक्तिवालों को अधिक उष्ण जल का सेवन नहीं करना चाहिए। ऐसे रोगियों को १०३ से लेकर १०५ अंश तक के उष्ण जल में पाँच से लेकर दस मिनट तक हा बैठना चाहिए। इस प्रकार के रोगियों को स्नान प्रतिदिन सायङ्काल के समय करना चाहिए, जिससे मल शीघ्र शीघ्र निकलता रहे। यदि कोई पर्याप्त बलवान् है और केवल रक्त को ही शुद्ध करना चाहता है तो वह ११५ अंश अथवा इससे भी अधिक उष्ण जल में बीस से लेकर तीस मिनट तक बैठ सकता है। जापान में उष्ण जल का प्रयोग अधिक किया जाता है। वहाँ के निवासी १२० अंश तक के जल में बैठते हैं। किन्तु इतनी दूर तक जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी प्रकार की भी निर्बलता, सिर में चक्कर अथवा बेचैनी का लेशमात्र भी अनुभव होते ही स्नान बन्द कर देना चाहिए। यदि आपकी तबियत अधिक उष्णता से कुछ गिरी हुई

सो जान पड़े तो जल से तुरन्त बाहर निकल आओ। स्नान आरम्भ करने के कुछ मिनटों में ही आपके चेहरे से ख़ूब पसीना निकलने लगेगा। यह उसके शीघ्रतापूर्वक मल निकालने का प्रमाण है। इस प्रकार का स्नान तुर्की स्नान के समान न होने पर भी अत्यन्त लाभदायक होता है। यदि उष्ण स्नान पसीना होने के लिए किया गया हो तो उसके पश्चात् शरीर को ठण्डे जल में भीगे हुए स्पंज से मलना चाहिए। इसके पश्चात एक खुरदरे तौलिया से बदन को ख़ूब मलकर उष्ण वस्त्र पहिन लेने चाहिएँ, जिससे पसीना बराबर निकलता रहे। इस प्रकार के स्नान के पश्चात् शीघ्र ही सर्दी न लगने देनी चाहिए। यह उष्ण जल का स्नान कठिन चिकित्सा है, किन्तु यदि किसी में पर्याप्त जीवनशक्ति हो तो यह रक्त को शीघ्रतापूर्वक शुद्ध करने और शरीर के विषों के निकालने में अपने प्रभाव को तत्काल ही दिखलाता है। यह स्नान इनल्फुएंजा, अथवा घने शीत, फिरङ्ग रोग (सिफलिस), अथवा किसी ऐसे रोग में—जिसमें शरीर तो विषाक्त हो जावे और उसमें ज्वर न हो—अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। ज्वर भी शरीर की विषाक्त दशा का ही नाम है। अतएव उसमें भी चर्म के द्वारा ही विषों को निकालना चाहिए।

रक्त-शुद्धि के लिए अङ्ग के किसी भाग अथवा पूर्ण शरीर पर गीले कपड़े की गद्दी भी अत्यन्त लाभ-प्रद सिद्ध होती है। यदि कोई व्यक्ति खाट पकड़ चुका हो तो उसको उष्ण कम्बल में लपेट देने से भी उपर्युक्त उष्ण-स्नान जैसा ही लाभ होगा। यदि ज्वर अधिक हो तो ठण्डे जल में भीगी हुई कपड़े की गद्दी से काम लिया जा सकता है। इससे ज्वर का तापमान तो कम हो ही जावेगा, साथ ही शरीर के विष भी अत्यन्त आश्चर्य-जनक रूप से निकल जावेंगे। इस गद्दी को लपेटने का ढङ्ग यह है कि दो-तीन कपड़ों को पानी में ख़ूब भिगोकर उनको

नङ्गे रोगी के समस्त शरीर पर लपेट दो। केवल सिर को ही खुला छोड़ना चाहिए। यदि पूरे एक बड़े वस्त्र में ही लपेटना हो तो वस्त्र के एक ओर के किनारे से हाथों के नीचे शरीर को लपेटकर फिर दूसरे कोने को हाथों के ऊपर से लपेटना चाहिए। इसके पश्चात् रोगी को पूर्णतया उष्ण कम्बलों में लपेटकर उनको पिनों से कस देना चाहिए। यदि किसी में जीवनशक्ति कम हो तो उसमें उष्णता फिर लाने के लिए उसके पैरों के पास उष्ण लोहे को रख देना चाहिए। इस क्रिया से रोगी में शीघ्र ही उष्णता आ जावेगी। इस प्रकार दो या तीन घण्टों तक लिपटे रहना चाहिए, अथवा इसका प्रयोग सायंकाल के समय करने पर नींद आ जाने और कोई असुविधा न जान पड़ने की दशा में उसको रातभर बँधे रहने देना चाहिए।

जिस रोगी की फिर बल प्राप्त करने की शक्ति निर्बल हो उसके समस्त शरीर पर गीली पट्टी लपेटी जाने से उसकी जीवनशक्ति पर अत्यधिक दबाव पड़ सकता है। ऐसी अवस्था में केवल सीने और पेट पर ही पट्टी बाँधनी चाहिए। यह वास्तव में उस प्रक्रिया का एक भेद मात्र ही है। इस प्रकार की उष्ण पट्टी भी बड़ी लाभदायक होती है, किन्तु ज्वर में ठण्डी पट्टी ही बाँधनी चाहिए। इस प्रकार की सभी पट्टियों में अपने बिस्तर पर पहले से कई कम्बल रख देने चाहिएँ। फिर उनके ऊपर गीली पट्टी को शीघ्रतापूर्वक रक्खो, जिससे शरीर के चारों ओर पट्टी लपेटने पर कम्बल को इस प्रकार खींचा जावे तो रोगी उसमें पूर्णतया लिपट जावे।

ये सब प्रणालियाँ चर्म के कार्य की फुर्ती को बढ़ाने में अत्यन्त उपयोगी हैं। जो लोग व्यायाम द्वारा पसेव न निकालते हों उनको इन प्रणालियों का उपयोग अवश्य करना चाहिए। सभी संक्रामक दशाओं में—जिनमें रक्त को शुद्ध करना आवश्यक हो—

प्रतिदिन मर्दन स्नान और वायु स्नान करना चाहिए। व्यायाम के साथ उस उष्ण-जल-पान-प्रणाली की उपेक्षा मत करो, जिसका वर्णन आहारनलिका को शुद्ध और बलिष्ठ करने के विषय में किया गया है। यदि कुछ कोष्ठबद्धता की प्रकृति हो तो उससे भी अपनी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है। इस सब के अतिरिक्त प्रतिदिन किसी प्रकार के भी पेशियों के कार्य को करना चाहिए। रक्त-शुद्धि के लिए उपयोगी खाद्यसामग्रियों का वर्णन 'पथ्यभोजन' वाले अध्याय में कर दिया गया है।

उपवास-चिकित्सा

अन्त में इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि यदि समस्त शरीर को पूर्णतया और शीघ्रतापूर्वक शुद्ध करना है तो उसके लिए उपवास सबसे अधिक उपयोगी है। शुद्धि की प्रणालियों में उपवास सबसे उत्तम है। जिस समय शरीर में कोई विकार उत्पन्न हो जावे और भूख न लगे तो एक से लगाकर तीन दिन तक तब तक उपवास करना चाहिए, जब तक भूख फिर न लगने लगे। यदि रोग अधिक कठिन हो और रक्तशुद्धि की अत्यधिक आवश्यकता जान पड़े तो उस समय अनेक दिन तक अथवा कई-कई सप्ताह तक भी उपवास किया जा सकता है। उपवास स्वयं एक ऐसा महत्त्व-पूर्ण विषय है कि उसका वर्णन इस छोटे से ग्रन्थ में विस्तार-पूर्वक नहीं किया जा सकता। उपवास से पूर्व अपनी शारीरिक दशा का ठीक-ठीक अध्ययन कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपवास तोड़ने की प्रणाली का भी ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिए।

उपवास के समय शरीर के मल निकालने के सभी कार्य अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक होने लगते हैं। यदि कुछ व्यर्थ कचरा होता है तो शरीर उसको उपवास-काल में पचाकर निकाल देता है। उपवास में पाचन-क्रिया को पूर्ण विश्राम मिलने के कारण, भोजन

को पचाने की साधारण शक्ति विकारों को पचाकर निकालने के कार्य में लग जाती है। यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उस दशा में शरीर के सभी कार्य केवल मल निकालने के लिए ही होते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस अध्याय में दी हुई रक्त-शुद्धि की सामान्य प्रणाली के उपयोग से उपवास को और भी अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। उपवास के साथ-साथ चर्म के कार्य को बल पहुँचाने वाले उपाय और भी अधिक उपयोगी होते हैं। स्वतन्त्र रूप से जल पीने और विशेष कर उष्ण-जल-पान-प्रणाली के साथ-साथ आँतों को धोते रहने से उपवास में मल और भी अच्छी तरह निकल जाते हैं।

स्वास्थ्य में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शुद्ध रक्त है। यदि रक्त शुद्ध नहीं है तो उसको उपर्युक्त उपायों से शुद्ध किया जा सकता है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि रक्त-शुद्धि—उत्तम रक्त की उत्पत्ति के लिए एक तो शुद्ध भोजन और कार्य की शक्ति और दूसरे व्यर्थ के कचरे, विषों और अन्य अशुद्धियों के शीघ्रता-पूर्वक निकलते रहने पर निर्भर है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

स्नान के नियम

चर्म के कार्य की फुर्ती को बढ़ाने के महत्त्व का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। इस विषय में सामान्य स्नान भी बड़ा उपयोगी होता है। यदि चर्म को नित्य ही अच्छी तरह शुद्ध किया जावे तो अनेक रोग आते-आते रुक ही जावें।

यदि आन्तरिक शुद्धि के पूर्वोक्त उपायों का प्रयोग नित्य किया जावे, तो सप्ताह में साबुन से मलकर एक बार स्नान करना भी

पर्याप्त है। यदि कोई व्यक्ति पेशियों का पर्याप्त व्यायाम करता है, और भोजन आदि के सम्बन्ध में इतना सतर्क रहता है कि मल निकलने के सभी कार्य ठीक-ठीक होते रहें तो बाह्य शरीर की शुद्धि को बार-बार शीघ्रतापूर्वक करने की आवश्यकता नहीं है; किन्तु यदि कोई रक्त शुद्ध करने और चर्म के कार्य को बढ़ाने की प्रणालियों का उपयोग नहीं करता तो उसको शुद्धि के लिए दैनिक स्नान करना चाहिए। उचित यह है कि दैनिक ठण्डे जल से स्नान करते हुए सप्ताह में एक या दो दिन, आवश्यकता के अनुसार, उष्ण जल से स्नान किया जावे। ठण्डे जल का स्नान पुष्टि के लिए तथा उष्ण जल का स्नान शुद्धि के लिए किया जाता है। यदि कुछ आन्तरिक फुर्ती को बढ़ानेवाला व्यायाम भी प्रतिदिन किया जाता हो तो नित्य स्नान से अत्यन्त अधिक लाभ होता है। यह बात स्मरण रक्खो कि उष्ण-जल-पान-प्रणाली का अनुसरण करते हुए ठण्डे जल का स्नान—कुछ उपयोगी होने पर भी—आवश्यक नहीं है।

ठण्डे जल क स्नान से कुछ व्यक्तियों को हानि पहुँचने के कारण उसकी उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता के विषय में बड़ा भारी विवाद खड़ा हो गया है। सम्भव है, स्नान के सिद्धान्तों को न जानने और ठण्ड को सहन करने योग्य जीवनशक्ति का अभाव होने से शीतल स्नान से कुछ हानि हुई हो; किन्तु उसके लाभ बहुत कुछ स्नान के ढङ्ग और स्नान करनेवाले की शारीरिक दशा पर निर्भर हैं।

यदि कोई पुरुष स्नान के पश्चात् तुरन्त ही उष्णता को फिर प्राप्त कर सके तो शीतल स्नान का रक्तावर्त की पूर्ण प्रणाली पर बलदायक प्रभाव पड़ता है। यदि स्नान के पश्चात् उष्णता न आवे, वरन् सर्दी, बेचैनी और कँप-कँपी होने लगे तो यह समझना चाहिए कि स्नान अनुकूल नहीं आया। इस अवस्था में या तो

स्नान करना एकदम बन्द कर देना चाहिए, अथवा स्नान से पूर्व शरीर में अधिक उष्णता उत्पन्न करने के लिए अधिक व्यायाम करना चाहिए। साधारणतया यदि कोई पुरुष स्नान से पूर्व उष्ण हो और शीतल जल का स्नान एक उष्ण कमरे में करे तो वह स्नान के पश्चात् उष्णता को फिर सुगमता से प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को स्नान कम समय तक भी करना चाहिए। जल में अधिक समय तक मत ठहरो। किसी-किसी समय हाथ से मल-मलकर स्नान करना भी लाभदायक होता है। यह स्नान हथेलियों को पानी में भिगोकर फिर उनसे समस्त शरीर को मल-कर किया जाता है। इसके स्थान में स्पञ्ज अथवा अँगोछे को भिगोकर भी शरीर को मला जा सकता है।

पीछे सूखी मालिश के स्नान का भी वर्णन किया जा चुका है। यह मालिश व्यायाम के पश्चात् शरीर को स्नान के लिए तैयार करने के उद्देश्य से करनी चाहिए। यह बतलाया जा चुका है कि इस सूखी मालिश से चर्म के कार्य को शक्ति मिलती है। इस मालिश से चर्म इतना उष्ण हो जाता है कि शीतल जल के स्नान में आनन्द आ जाता है। वास्तव में स्नान के लिए इस मालिश का वही महत्त्व है, जो भोजन करने के लिए भूख का होता है। आपको अपने भोजन और शीतल स्नान दोनों में ही आनन्द का उपभोग करना चाहिए। शीतल स्नान आनन्दप्रद होने पर ही लाभदायक होता है। यदि आपको उससे भय लगे, यदि आपको उसका विचार करने मात्र ही से कँपकँपी चढ़ आवे तो आपको उससे लाभ नहीं हो सकता। आपमें उसका आनन्द लेने के लिए पर्याप्त बल और जीवन-शक्ति होनी चाहिए। मालिश से आपके शरीर की दशा ऐसी हो जावेगी कि शीतल जल आपको अच्छा लगने लगेगा। समस्त शरीर को उष्ण करनेवाले व्यायाम का भी वही प्रभाव होगा।

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि जिस प्रकार अधिक उष्णता में भरे होने पर ठण्डा जल हानि करता है, उसी प्रकार शीतल स्नान भी हानि करता है। यह कहा गया है कि शीतल जल पीने अथवा शीतल जल में स्नान करने के पश्चात् तब तक ठहरना चाहिए, जब तक सर्दी न छूट न जावे। यह बात कुछ बुद्धिमत्ता-पूर्ण है कि अधिक उष्ण दशा में शीतल जल में प्रवेश नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार अत्यधिक जल पीना भयानक है, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक ठण्डा होना भी भयानक है। किन्तु डाक्टर फ़र्नर मैकफेडन की सम्मति में अत्यधिक उष्ण होने पर भी शीतल जल में प्रवेश करने से लाभ ही होता है। ऐसी दशा में हानि तब होती है जब जल में कँपकँपी चढ़ने तक रहा जावे। वास्तव में तो अत्यधिक उष्णता में ही ठण्डे जल का आनन्द पूर्णतया लिया जा सकता है। ऐसी दशा में आप जल से निकलकर फिर शीघ्र ही उष्ण हो जाओगे। जब आपके हाथ-पैर ठण्डे हों तो शीतल जल से स्नान करने का उद्योग मत करो। ऐसी दशा में हाथों से ही स्नान कर लेना चाहिए। अत्यधिक उष्ण होने पर धीरे-धीरे ठंडा होना अच्छा रहता है। स्नान के पश्चात् उष्णता प्राप्त करने के लिए तुरन्त ही उष्ण वस्त्र पहिन लेने चाहिएँ। अत्यधिक उष्ण होने पर अधिक ठण्डा जल न पीकर कुछ उष्ण जल पीना चाहिए। उष्ण जल उस दशा में चाहे जितना पिया जा सकता है।

जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है, यदि आप दैनिक उष्ण-जल-पान-प्रणाली का अनुसरण करते हुए नित्य व्यायाम करते हो तो प्रतिदिन शीतल जल में स्नान करना आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि आपके शरीर में शक्ति अधिक है तो आप इस प्रणाली के साथ नित्य स्नान भी कर सकते हैं। परन्तु ऐसी दशा में रक्त-संचार तथा कार्य की फुर्ती को बनाये रखने के लिए स्नान की

कम आवश्यकता है। अतएव इस प्रश्न का निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार ही करना चाहिए।

शीतल स्नान की प्रतिक्रिया

शीतल स्नान करनेवाले अनेक व्यक्ति जल में बहुत समय तक रहना पसन्द करते हैं। इस प्रकार वे स्नान से होनेवाले कुछ लाभों से वञ्चित रह जाते हैं। शीतल स्नान थोड़े समय तक ही करना चाहिए। मुख्य लाभ तो प्रतिक्रिया में है। यदि प्रतिक्रिया हुई तो सभी ठीक है। शीतल जल का प्रथम कार्य शरीर के पट्ठों को संकुचित करना होता है; पट्ठों के साथ ही रक्त-कोश भी संकुचित हो जाते हैं, जिससे रक्त चर्म से दूर हट जाता है। किन्तु प्रतिक्रिया होने पर रक्त उपचर्म में अत्यधिक परिमाण में आता है और उससे शरीर उसी प्रकार चमकने लगता है, जिस प्रकार सफल स्नान में चमका करता है। शरीर को खुरदरे कपड़े से मलकर भी इस प्रतिक्रिया को सहायता पहुँचाई जाती है। जल में अधिक समय तक रहने से जीवनशक्ति पर अधिक बोझ पड़कर सर्दी लग जाती है। पानी में डुबकी लगाते समय शरीर के सभी भागों को भिगो लो और फिर शीघ्रता से बाहिर आ जाओ।

यदि पुनः बल प्राप्त करने की शक्ति त्रुटिपूर्ण हो तो ठण्डे जल से स्नान नहीं करना चाहिए। ऐसी दशा में पहिले बतलाया हुआ हाथों का स्नान अच्छा रहता है। ऐसी दशाओं में पैरों की उष्णता को बनाये रखने से आप फिर शीघ्रतापूवक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप हस्त-स्नान अथवा स्पंज-स्नान करते समय अथवा स्नान के टब से हाथ से पानी उछालते समय अपने पैरों को उष्ण जल में रक्खे रहें तो उष्णता फिर दोबारा शीघ्रतापूर्वक आ जाती है। पैरों के उष्ण रहने पर रक्तावर्त अधिक सरलता से होता रहता है। उष्ण जल से

स्नान करने के पश्चात् टब से निकलने के पूर्व शरीर के सब भागों पर ठण्डे पानी को उछाल-उछाल कर डालना चाहिए। उष्ण जल से स्नान करने के पश्चात् रोमकूपों को बन्द करने के लिए स्पञ्ज, छींटों अथवा बुंदों से ठण्डा पानी अवश्य ही अपने शरीर पर डालना चाहिए। इसके पश्चात् एक तुर्की तौलिया से शरीर को सूखे ही ख़ूब रगड़-रगड़कर मलना चाहिए।

उदर-स्नान

टब में पूरे शरीर से स्नान करने के स्थान में उदर-स्नान को भी उत्तम बतलाया गया है। कुछ नाड़ी-केन्द्रों पर विशेष रूप से अनुकूल प्रभाव डालने के कारण यह अत्यन्त उपयोगी पौष्टिक स्नान है। इस स्नान में शरीर के मध्य भाग, नितम्ब-प्रदेश और उदर-प्रदेश को ही पानी में भिगोना चाहिए। इस स्नान के लिए विशेष प्रकार के टब भी बाजार में आते हैं, किन्तु इसको साधारण टबों में भी किया जा सकता है। साधारण में छः से लगाकर दस इंच गहरा पानी भरने से उदर-स्नान सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। पैरों को इस टब के किनारे पर और नितम्बप्रदेश को पानी में रक्खो। कार्य-सम्बन्धी फुर्ती को बल देने के लिए यह स्नान विशेष रूप से उपयोगी है। उदर-स्नान में जल जितना ही ठण्डा हो अच्छा है। किन्तु जिस व्यक्ति में जीवन-शक्ति कम है उसको ७० अंश से कम तापमान वाले जल में नहीं बैठना चाहिए। वस्तिगह्वर-प्रदेश में सूजन और दर्द होने की दशा में उष्ण उदर-स्नान को भी कभी-कभी लाभदायक बतलाया जाता है।

साबुन

शरीर की स्वच्छता के लिए उष्ण स्नान करने में साबुन का प्रयोग उपयोगी होता है। यदि उपचर्म पतला अथवा अत्यन्त रूक्ष हो तब तो साबुन विशेष रूप से लाभदायक होता है। ऐसी दशा में बलवान् साबुन हानिप्रद होते हैं, यद्यपि उनके प्रभाव

को भी थोड़े से ज़ैतून के तेल को शरीर पर मलने से दूर किया जा सकता है। अच्छा तो यह है कि ज़ैतून के तेल और सोडे से बने हुए कैस्ट्राइल सोप का ही उपयोग किया जावे। वैसे तो यह साबुन सभी दशाओं में उपयोगी होता है, किन्तु चर्म के पतले अथवा रूक्ष होने पर यह विशेष रूप से उपयोगी होता है। हलके शरीरवालों का चर्म प्रायः रूक्ष होता है। साधारण स्वच्छता के लिए अत्यन्त उष्ण जल में स्नान नहीं करना चाहिए। सामान्य रूप से १०३ अंश से १०५ अंश फ़ैरनहीट (Fahrenheit) तक का जल और साबुन ठीक रहता है; इससे स्नान करने में कुछ मिनट से अधिक न लगें; किन्तु रक्त-शुद्धि के विशेष उद्देश्यों के लिए किये जानेवाले उष्ण स्नान में ११० अंश से ११५ अंश फ़ैरन-हीट तक के उष्ण जल में अधिक समय तक भी स्नान किया जा सकता है।

सोलहवाँ अध्याय

वस्त्र

यह प्रायः सुनने में आया करता है कि वस्त्रों ने अमुक व्यक्ति को बना दिया और अमुक को बिगाड़ दिया। इस बात को प्रायः इस दृष्टि से कहा जाता है कि वस्त्र सुन्दर पहिने जावें, किन्तु इसका अर्थ कुछ इससे भी अधिक गम्भीर है। हम अपने पहिनने के वस्त्रों से बहुत कुछ बनते और बिगड़ते हैं। वस्त्र-निर्माताओं की इच्छा से वस्त्रों को पहिनने के विशेष नियम बन गये हैं। फ़ैशन में बराबर परिवर्तन होते रहने से उनको अधिक लाभ होता है, अत-एव फ़ैशन का ढङ्ग प्रतिवर्ष बदलता रहता है। यह कहा जाता है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ बेढङ्गे वस्त्र पहिनने की अपेक्षा संसार से

पृथक् रहना पसन्द करने लगी हैं। अतएव वे प्रतिवर्ष अपने पुराने वस्त्रों को फेंककर नये वस्त्र बनवाती हैं।

वस्त्र पहिनने का उद्देश्य

हमको यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि आधुनिक उन्नति के इस युग में वस्त्र एक आवश्यक बुराई है। एक समय ऐसा था जब वस्त्र केवल शरीर की रक्षा करने अथवा शरीर को शीत से बचाने के लिए पहिना जाता था। शरीर को ढकने का तो कोई ध्यान ही नहीं था, क्योंकि सभी मनुष्यों के नाक, आँख, हाथ और पैर आदि सभी अंग यथास्थान ठीक समझे जाते थे, किन्तु इस समय शरीर को हमारे अंगों को ढकने का साधन समझा जाता है। इस समय मनुष्य के मन में कृत्रिम लज्जा ने घर कर लिया है, जिसके कारण मानवी अंगों को भद्दा समझा जाता है और इसी लिए उनको ढकना पड़ता है।

पहिनने योग्य उचित वस्त्रों के विषय में विचार करते समय हमको लोक-व्यवहार के विषय में विचार करना ही पड़ता है; किन्तु उससे भी अधिक हमको पहिले शरीर की रक्षा के विषय में सोचना पड़ता है। शरीर के आराम से अभिप्राय उसको आवश्यक उष्णता पहुँचाना ही नहीं है, वरन् उसको इस प्रकार के वस्त्र पहिनाना है, जिससे शरीर के प्रत्येक अंग पर बिना जोर पड़े ही उसको यथेष्ट घुमाया-फिराया जा सके। आदर्श वस्त्र वही हैं, जिनके पहिनने से हम अपने को उसी प्रकार स्वतन्त्र और खुले हुए अनुभव करें, जिस प्रकार बिल्कुल बिना वस्त्र के कर सकते हैं। वस्त्रों के कारण हमारी गति में आवश्यक से अधिक किसी प्रकार की बाधा नहीं आनी चाहिए। यूरोपीय स्त्रियों का आधुनिक दामन (Skirt) अत्यन्त दोष-युक्त होता है। इस प्रकार के वस्त्र में स्त्री को पग पग पर बाधाएँ आती हैं। यदि पुरुष स्वयं

उस वस्त्र को पहिनकर कुछ दूर चलकर देखें तो उनको उस सम्बन्ध में स्त्रियों की कठिनाई का ज्ञान हो।

पाश्चात्य जूता

हमारी वेषभूषा की अन्य अनेक त्रुटियाँ हमारे शरीर की स्वतन्त्रता में बाधा देती हैं। विलायती ढङ्ग के तङ्ग और व्यर्थ जूते भी छोड़ देने योग्य हैं। जूतों का उदाहरण हमारी दासता का एक अच्छा प्रमाण है। इस बात के अनेक उदाहरण हैं कि जूते को पैर के अनुरूप नहीं पहिना जाता, वरन् पैर को ही जूते के अनुरूप बनाया जाता है, जिससे अत्यधिक कष्ट होता है। जूता पैर में ठीक आना ही चाहिए। जूते में जितना ही नंगे पैर चलने के समान स्वतन्त्रता का अधिक अनुभव किया जावेगा, उसे उतना ही अधिक पूर्ण समझा जावेगा। पैर की अँगुलियों को दबाकर बेढंगी नहीं करना चाहिए। पैर का अँगूठा पंजे की सरल रेखा की सीध में होना चाहिए। उसको झुकाकर मध्यमा अंगुली के स्थान पर नहीं लाना चाहिए। जूते में सभी अँगुलियों को कुछ न कुछ फैलने का अवकाश मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त ठीक जूता पहिनते ही पैर को आराम देगा। जूते में अन्दर-अन्दर तोड़-मरोड़ की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।

ऊँची एड़ी का जूता

जूते में लगाई जानेवाली कृत्रिम एड़ी फैशन की एक और विचित्र लहर है। यदि सर्वशक्तिमान् प्रकृति मनुष्य के पैर को पूर्ण करने में ऊँची एड़ी को आवश्यक समझती तो वह अवश्य ही मनुष्य को ऊँची एड़ी देती। कृत्रिम एड़ी—विशेष कर स्त्रियों द्वारा प्रयोग की जानेवाली ऊँची एड़ी—प्रकृति और स्रष्टा का अपमान है। जब कभी हम वास्तव में सभ्य हो जावेंगे तो ऊँची एड़ियां

का एकदम लोप हो जावेगा। यह निश्चय है कि सर्वशक्तिमान् स्रष्टा को मनुष्य के पैर को बनाते समय अपने कार्य का पूर्ण ज्ञान था। मनुष्य को एड़ी सहित सारा ही तलवा चलने के लिए दिया गया है, अतएव पैर के सम्बन्ध में मनुष्य अपनी चतुरता अधिक नहीं दिखला सकता। यदि आप ऐसा जूता पहिनें जिसमें आपको नंगे पैर चलने के जैसी स्वतन्त्रता हो तो उसी दशा में आपका पैर का ढकना पूर्ण हो सकता है। वास्तव में ऐसा जूता ही आपकी आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

तङ्ग हैट

शरीर की दूसरी आवश्यकता पर ध्यान देते हुए हमको यूरोपीय पोशाक के तङ्ग हैटों (टोपों) की निन्दा करनी पड़ती है। यदि हैट को ही पहिनना है तो वह यथासम्भव अधिक से अधिक हल्का हो और इतना तङ्ग न हो कि उससे खोपड़ी के रक्तावर्त में बाधा आवे। अनेक गंजे सिरवालों की खोपड़ी के बाल तङ्ग हैटों से ही उड़े हुए होते हैं।

कड़े कालर

वर्त्तमान समय में सब कहीं पहिने जानेवाले कड़े कालर गर्दन की स्वाभाविक गठन में बाधा पहुँचाते हैं। उनके कारण गर्दन को सीधी रखना अत्यन्त कठिन हो जाता है। आज-कल प्राय: पाये जानेवाले गोल कन्धों का कारण बहुत कुछ ये कठोर कालर ही होते हैं। पतलून बाँधने के फ़ीतों (गेलिसों) का प्रभाव भी बहुत कुछ ऐसा ही होता है। उनके कारण भी कन्धे आगे को खिंच आते और सीधे खड़े रहना कठिन हो जाता है। चौड़े सीनेवाले को उनके कारण भले ही कुछ अनुभव न हो, किन्तु गोल सीनेवाले पर उन फ़ीतों के कारण बराबर दबाव पड़ता रहता है।

आदर्श वस्त्र

यदि मनुष्यों के लिए आदर्श वस्त्र चुनने का अवसर आवे तो यह मानना पड़ेगा कि भारतवासियों, रोमनों, यूनानियों अथवा स्काटलैण्ड-वासियों के प्राचीन वस्त्र मनुष्य-जाति के सर्वथा अनुकूल थे। उन वस्त्रों से शरीर के सब अङ्गों को स्वतन्त्रता के साथ साथ शरीर को अपनी स्थिति को ठीक रखने में भी सहायता मिलती थी। उन वस्त्रों में शरीर के सब भागों को पर्याप्त वायु भी लग सकती है। भारतवासियों की धोती और कुर्ता मनुष्य जाति के लिए सबसे अधिक अनुकूल वस्त्र हैं। स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से भी ये वस्त्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें मनुष्य-शरीर को सदा ही वायु लगती रहती है, जो बड़ी उपयोगी होती है। अनुपयुक्त वस्त्रों के पहिनने और अङ्गों के सञ्चालन में बाधा पड़ने से शरीर में अनेक प्रकार की निर्बलता आ जाती है। यूरोपीय पोशाक तो मनुष्य-जाति के लिए बिलकुल अस्वाभाविक है।

यूरोपीय ज़नाने वस्त्रों में कॉरसेट (Corsets) सबसे अधिक हानिकर होते हैं। उनके तङ्ग होने का कटिरेखा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वह समय शीघ्र आनेवाला है जब कॉरसेट का एकदम बहिष्कार कर दिया जावेगा।

पूरे वस्त्र पहिने हुए भी हमको अङ्गों के सञ्चालन में वही स्वतन्त्रता होनी चाहिए, जो नङ्गे रहने पर होती है। सबसे पूर्ण वस्त्र तो हमारा जन्म-काल का वस्त्र अर्थात् चर्म होता है। हम उसी वस्त्र को पहिने हुए संसार में आते हैं। शीतऋतु में अवश्य ही हमको अधिक वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु ग्रीष्म-ऋतु में हम जितने ही कम वस्त्र पहिनते हैं, उतने ही आनन्द-पूर्वक रहते हैं। अतएव ग्रीष्म-ऋतु के लिए तो शरीर को खुले रखना ही अधिक सुविधा-जनक है, किन्तु वर्त्तमान सभ्यता खुले रहने को असभ्यता समझती है। अनेक भारतवासी भी उस

कृत्रिम असभ्यता के भय से कठोर ग्रीष्म-ऋतु में कोट, बूट, पतलून और हैट डाटे रहते हैं; किन्तु यह सब अस्वाभाविक है।

वस्त्रों के रङ्ग

वस्त्रों में रङ्ग का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गर्मियों में तो यह प्रश्न और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उस समय हमको विशेष रूप से हल्के वस्त्र पहिनने पड़ते हैं। गहरे रङ्ग के सभी वस्त्र उष्णता अधिक ग्रहण करते हैं, अतएव वे पहिननेवाले को बड़ा कष्ट देते हैं। इसके अतिरिक्त काले और गहरे रङ्ग शरीर पर प्रकाश नहीं पड़ने देते, जो दूसरी हानि है। रक्त-शुद्धि वाले अध्याय के सूर्य-स्नान के वर्णन में बतलाया जा चुका है कि धूप जीवन-शक्ति तथा उत्तेजना को अधिक करनेवाली है। सामान्यतया हम अपने चर्म को ही नहीं छिपाते वरन् उस पर प्रकाश भी नहीं पड़ने देते। हमारे शरीर को वायु और प्रकाश दोनों की ही आवश्यकता है, अतएव गहरे रङ्ग के वस्त्र ठीक नहीं रहते। काले वस्त्र धूप में उष्ण हो जाने के कारण शरद्-ऋतु में अच्छे रहते हैं। काला वस्त्र धूप से हटते ही हल्के रङ्गवाले वस्त्र की अपेक्षा उष्णता को अत्यन्त शीघ्र छोड़ देता है; अतएव वह धूप से हटने पर शरद्-ऋतु में अन्य वस्त्रों से अधिक ठण्डा भी हो जाता है।

ग्रीष्म-ऋतु में श्वेत अथवा हलके रङ्गवाले वस्त्र अच्छे रहते हैं; क्योंकि एक तो वे ठण्डे रहते हैं दूसरे प्रकाश उनमें से होकर शरीर पर पहुँच सकता है। बिना वृक्षोंवाले देशों में रहनेवाले अरब आदि धूप में अधिक रहने के कारण सिर पर साफा बाँधे रहते और श्वेत वस्त्र पहिने रहते हैं। जल्दी मैला हो जाने के कारण अत्यन्त श्वेत वस्त्र अधिक काम का नहीं होता, अतएव भूरे और मटमैले रङ्ग के वस्त्र प्रायः अच्छे रहते हैं।

ठण्डे देशों में अधिक धूप सेवन करना सुगम है। पृथ्वी की अनेक जातियों के चर्म में धूप में अधिक रहने के कारण एक विशेष प्रकार का रोग़न उत्पन्न हो गया है। भूमध्यरेखा के पास की जातियाँ इस रोग़न के अत्यधिक होने के कारण काली होती हैं। उससे बहुत दूर की जातियाँ उज्ज्वल चर्म वाली गौरवर्ण होती हैं। बीच की अक्षांश-रेखाओं की जातियाँ या तो भूरी होती हैं अथवा ज़ैतून के रङ्ग जैसी होती हैं। कुछ गहरे रङ्गवाले गोरे लोग उन लोगों की अपेक्षा अधिक धूप सहन कर सकते हैं, जिनके नेत्र नीले और रङ्ग अत्यन्त श्वेत होता है। ऐसी अत्यन्त गौरवर्ण जातियाँ स्कॉटलैण्ड, नार्वे और स्वेडेन में रहती हैं। ये जब अपने देशों से नीचे उतरकर उष्ण जल-वायु में जाती हैं तो उनको वहाँ के अत्यधिक प्रकाश से अपनी रक्षा करनी पड़ती है। उस समय इनको बाहर श्वेत अथवा हलके रङ्ग के वस्त्र पहिनकर अन्दर प्रकाश से बचने के लिए गहरे रङ्ग के वस्त्र पहिनने चाहिएँ। उष्ण देशों के पशुओं को प्रकृति हलके अथवा धौले रङ्ग के बाल देकर उसके नीचे काली अथवा अधिक रोग़नवाली खाल देती है। गोरे लोगों को भी उष्ण देशों में मध्याह्न के समय प्रकृति के इसी उदाहरण का अनुसरण करते हुए बाहर हलके और अन्दर गहरे रङ्ग के वस्त्र पहिनने चाहिएँ। उनका टोप भी ऊपर से सफ़ेद अथवा हल्के रङ्ग का हो और उसके अन्दर गहरे रङ्ग का कपड़ा लगा हुआ हो। धूप जीवन के लिए आवश्यक होती है। धूप-स्नान अत्यन्त उपयोगी होता है, अतएव हमको ऐसे वस्त्र ही पहिनने चाहिएँ, जिनसे हमारे चर्म तक प्रकाश जा सके।

पृथक्-पृथक् ऋतु के वस्त्र

सामान्यत: शरद् अथवा ग्रीष्म-ऋतु में आवश्यकता से अधिक वस्त्र नहीं पहिनने चाहिएँ और वे वस्त्र भी ऐसे हों कि वायु उनमें होकर चर्म तक सुगमता से जा सके। अतएव नीचे के वस्त्र

का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सर्दियों के लिए ऊन अच्छा रहती है; किन्तु छेददार होने के कारण बारीक ऊन के कपड़ों को अधिक उपयोगी समझा जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्दर का वस्त्र सर्दी से बचानेवाला होने पर भी यथासम्भव अधिक से अधिक छेददार हो। जूतों के विषय में भी इसी सिद्धान्त से काम लेना चाहिए। वायु न जाने योग्य जूते अत्यन्त हानिकर होते हैं। चमड़े में अपनी स्वाभाविक दशा में छेद होते हैं, अतएव वह आरोग्यजनक होता है, किन्तु विलायती चमड़े के छेदों को एक विशेष प्रणाली से पकाकर बन्द कर दिया जाता है; अतएव उस चमड़े के जूते अत्यन्त उष्ण, कष्टकर और गन्दे होते हैं। जूते की तली में केवल चमड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगा होना चाहिए। यदि तला एक तह के चमड़े का हो तो बहुत अच्छा रहता है। यद्यपि ऐसे जूते पानी को सोख लेंगे, किन्तु वे सूख भी शीघ्र ही जावेंगे। यदि पैर उष्ण रहें तो उसके भीगने से कुछ विशेष हानि नहीं होती।

अब थोड़ा सर्दियों के वस्त्र का विचार किया जाता है। जाड़ों में घरों को प्रायः उष्ण बना लिया जाता है, अतः घरों में गर्मियों के वस्त्र ही पहिनने चाहिएँ। घर से बाहर निकलने पर उष्ण वस्त्र अवश्य पहिन लेने चाहिएँ। घर के बाहर और भीतर एक से वस्त्र नहीं पहिनने चाहिएँ।

यह कहा जा चुका है कि वस्त्र एक आवश्यक दोष है। इसके कारण न तो हमारे अंग-सञ्चालन में बाधा और न हमको प्रकाश तथा वायु की कमी होनी चाहिए। वस्त्रों में अधिक ढके रहने-वालों को कभी-कभी वायु-स्नान अवश्य कर लेना चाहिए। सायंकाल के समय अपने कमरे में लिखते अथवा पढ़ते समय आपको वायु-स्नान अवश्य करना चाहिए। घर पर कोट को पहिन कर कभी नहीं बैठना चाहिए। यदि आप प्रति दिन

नियम-पूर्वक सूर्य-स्नान न कर सकें तो आपको बाहर धूप में निकलते समय ऐसे वस्त्र पहिनने चाहिएँ, जिनसे धूप छनकर आपके शरीर पर लगे और आपका स्वयं ही सूर्य-स्नान हो जाय।

सत्रहवाँ अध्याय

नींद

जीवनशक्ति को बनाये रखने के लिए नींद सब से अधिक आवश्यक है। स्वास्थ्य के लिए ली जाने योग्य नींद के परिमाण के विषय में अनेक मतभेद हैं, किन्तु यह निश्चय है कि अधिक से अधिक शक्ति का संचय करने के लिए पर्याप्त नींद की आवश्यकता है।

अनिद्रा की प्राणघातकता

नींद भोजन से भी कहीं अधिक आवश्यक है। मनुष्य उपवास के आरंभ में यदि अच्छा पौष्टिक भोजन ले ले और समाप्त होने पर भी सन्तोषजनक भोजन कर ले तो आवश्यक होने पर बिना किसी विशेष असुविधा के कई दिन अथवा कई सप्ताह तक उपवास कर सकता है। किन्तु नींद का 'उपवास' बिना हानि सहे थोड़े दिन भी नहीं किया जा सकता। मनुष्य बिना बिल्कुल सोये एक पूरा सप्ताह भी बड़ी कठिनता से ही निकाल सकता है। यह प्राय: देखा गया है कि जिन कुत्तों को पर्याप्त भोजन भी देकर सोने नहीं दिया जाता वे खाली पेट सोनेवाले कुत्तों की अपेक्षा अधिक बीमार पड़ जाते हैं। कुत्ता चार-पाँच

दिन तक जगाया जाने से मर जाता है। मनुष्य नींद के वेग को कुत्तों की अपेक्षा कुछ अधिक सहन कर सकता है, किन्तु ऐसी दशा में वह भी पाँच या छे दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता।

इँगलैण्ड के इतिहास के आरंभ में प्राणदण्ड के अपराधियों को लगातार जगाकर मार डाला जाता था। चीन में आज भी उसी प्रणाली से काम लिया जाता है। चीनी लोगों के द्वारा बलपूर्वक जगाये जाने के भयंकर अत्याचार से अपराधी लोग, अन्य किसी दण्ड की अपेक्षा, अधिक भयभीत होते हैं। मनुष्य इस भयंकर प्रयोग से पागल होकर मर जाता है।

देर से सोना

इन घटनाओं से नींद की अनिवार्य आवश्यकता का पता अच्छा लग जाता है। दुर्भाग्यवश बड़े-बड़े नगरों में रात को बहुत देर से सोने की परिपाटी चल गई है। यह स्पष्ट है कि यदि पूर्णतया अनिद्रा भयङ्कर है तो देर से सोने और कुछ कम नींद लेने से भी जीवनशक्ति कम होकर स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। सभ्य देशों में अनेक व्यक्तियों के देर से सोने की प्रकृति के कारण स्नायुनिर्बलता आदि अनेक रोग हो जाते हैं। विद्युत्प्रकाश के नये-नये आविष्कारों के कारण देर से सोने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। इससे केवल देर में सोने के कारण निद्रा का नाश ही नहीं होता वरन् कृत्रिम प्रकाश के कारण नेत्रों पर वेग पड़कर नाड़ियाँ निर्बल हो जाती हैं। यदि आज-कल के सभ्य मनुष्य आरम्भिक मनुष्यों, पक्षियों और पशुओं जैसी सायङ्काल होते ही लेट जाने और दिन निकलते ही उठ खड़े होने को प्रकृति बना लें तो केवल इस एक परिवर्तन से ही सम्पूर्ण मनुष्य-जाति के स्वास्थ्य में क्रान्ति हो जावे।

नींद का परिमाण

हमको कितनी नींद की आवश्यकता है ? इस प्रश्न का सर्व-सामान्य ऐसा उत्तर कोई नहीं दिया जा सकता, जो सब पर लागू हो सके। प्रत्येक व्यक्ति की अवस्था भिन्न-भिन्न होती है। निस्सन्देह कुछ को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक नींद की आवश्यकता होती है।

टामस ए० एडीसन, जिसमें केवल असाधारण जीवनशक्ति ही नहीं, वरन् प्रत्येक बात असाधारण है, प्रायः कहा करता है कि अनेक स्त्री-पुरुष बहुत अधिक सोते हैं। मिस्टर एडीसन चौबीस घण्टों में तीन से लेकर पाँच घण्टों तक की नींद से ही अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं। असाधारण जीवनशक्ति-वाले अन्य ऐसे स्त्री-पुरुषों के विषय में भी सुना गया है, जो केवल चार अथवा पाँच घण्टे ही सोते हैं। यह संभव है कि उनको इतनी थोड़ी नींद पर्याप्त होती हो, किन्तु यदि यह ठीक है तो यह उनके शरीर के असाधारण रूप से बलवान् होने के कारण ही है।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए नींद के आवश्यक परिमाण के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि अधिक से अधिक जीवनशक्तिवालों और अत्यन्त अधिक बलवान् शरीरवालों को कम जीवनशक्ति और निर्बल शरीरवालों की अपेक्षा नींद की आवश्यकता कम होती है। बलवान् शरीर तथा महती जीवनशक्ति वाले नींद के समय भी शक्ति का निर्माण कर लेते हैं और पिछले दिन की थकावट को निर्बलों को अपेक्षा शीघ्र उतार कर फिर बल प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में अत्यन्त बलवान् मनुष्य शीघ्रतापूर्वक कम समय में आराम कर सकता है। उसका शरीर निर्बल मनुष्य की अपेक्षा दैनिक कार्य के श्रम की क्षति को शीघ्र पूर्ण कर सकता है। निर्बल शरीर और परिमित शक्तिवाले पुरुषों और स्त्रियों को फिर बल प्राप्त करने में अधिक

समय लगता है। अतएव मिस्टर एडीसन जैसे व्यक्ति की आवश्यकता का वर्णन साधारण स्त्री-पुरुषों के शरीर की दृष्टि से नहीं किया जा सकता।

आजकल के अनेक व्यक्ति सामान्यतः अत्यन्त अधिक न सोकर बहुत थोड़ा सोते हैं। नींद के विषय में घंटों की कोई संख्या निश्चित नहीं की जा सकती; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता के अनुसार नींद अवश्य लेनी चाहिए। यह प्रायः कहा जाता है कि अधिक सोने से मनुष्य मूर्ख हो जाता है। इस प्रकार की घटनाएँ असन्तोषजनक वातावरण में—विशेष कर घुटे हुए तथा अंधेरे कमरे में—सोने से होती हैं। कमरे के बाहर ताज़ा हवा में सोनेवाले व्यक्ति के अधिक सोने से मूर्ख बनने की कल्पना निरी कल्पना ही जान पड़ती है। अत्यधिक उष्णता से बेचैनी होती है, किन्तु इस विषय का वर्णन पीछे किया जावेगा। स्वाभाविक तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक दशाओं में कोई व्यक्ति कभी-कभी ही अधिक सो सकता है। यदि आप स्वाभाविक रूप से जगने के समय तक सोओ तो आपके अत्यधिक सोने की कोई सम्भावना नहीं है। निस्सन्देह कुछ व्यक्तियों को सात से लगाकर आठ घंटों तक की नींद की आवश्यकता पड़ती है। किसी-किसी को, विशेषकर स्त्रियों और बच्चों को, तो नौ से लगाकर दस तक अथवा इससे भी अधिक नींद की आवश्यकता होती है। ये साधारण बातें हैं। व्यक्तिगत अपवाद अनेक हो सकते हैं। यह पहिले कहा जा चुका है कि असाधारण जीवनशक्तिवालों को कम नींद की आवश्यकता होती है।

नींद का गहरापन

नींद के समय की अपेक्षा उसका गहरापन वास्तव में ही अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वास्तव में गिनती नींद के गहरेपन को ही की जाती है; अधिक गहरी नींद लाने के लिए कुछ स्वास्थ्य-

वर्द्धक कार्यों का करना आवश्यक है। इनमें प्रथम शारीरिक अथवा पेशियों की थकावट का औसत दर्जे का होना है। इसको नाड़ियों की उस थकावट से सुगमतापूर्वक पृथक् पहचाना जा सकता है, जिसमें सम्पूर्ण शरीर गड़बड़ा जाता है। इस प्रकार की असाधारण स्थिति उत्तेजना, अत्यधिक मानसिक श्रम, अथवा नाड़ियों पर बल पड़ने के किसी और कारण से हो सकती है। इस प्रकार की नाड़ियों की थकावट से प्रायः नींद नहीं आती; किन्तु शरीर की पेशियों की थकावट शारीरिक फुर्ती के कारण नींद के लिए अनुकूल होती है। अतएव जिनको नींद न आती हो, उनको बहुत दूर तक जाकर तब तक टहलना चाहिए, जब तक उनका समस्त शरीर नींद लाने योग्य न थक जावे। नींद की गहराई के सम्बन्ध में वायु, तापमान और बिस्तर की दशाएँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

स्वप्नावस्था

यदि आप गहरी नींद में सो सकते हैं तो आप तीन या चार घण्टे की नींद से इतना अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं कि जितना हलकी नींद में आठ घण्टे सोनेवाला भी प्राप्त नहीं कर सकता। नींद के इस अत्यधिक गहरेपन का अर्थ है, मस्तिष्क का पूर्ण विश्राम, पूर्ण अचेतनावस्था और किसी दशा में हमारी इन्द्रियों की दृष्टि से बेसुधी। हलकी नींद में मस्तिष्क के कुछ भाग विश्राम करते और कुछ थोड़ा बहुत काम करते रहते हैं। इसी दशा को स्वप्नावस्था कहते हैं। इसमें पूर्ण विश्राम की अपेक्षा कुछ होश रहता है और मस्तिष्क के कई भाग काम में लगे रहते हैं। इस प्रकार देखे हुए स्वप्न स्मरण भी रहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भाग अन्य दशाओं में भी काम में लगे रहते हैं, यद्यपि हमको उनके काम का पता नहीं चलता। ऐसे उदाहरण सुनने में आये हैं कि निद्रावस्था में गणित के बड़े-

बड़े प्रश्न हल हो गये हैं। नींद में सङ्गीत और कविताओं की रचनाएँ होती हुई भी सुनी गई हैं। इन सब बातों से उस अवस्था का पता चलता है जिसमें कुछ निद्रा तथा कुछ जागृति हो; दूसरे शब्दों में, मस्तिष्क के कुछ भाग सोये हुए तथा कुछ काम में लगे हुए हों। अत्यन्त गहरी नींद में सभी मानसिक शक्तियाँ विश्राम करती होती हैं, शक्तियाँ सुस्त पड़ जाती हैं और शरीर की फुर्ती ग़ायब हो जाती है। इस प्रकार की नींद फिर शक्ति प्राप्त कर लेती है। गहरी से गहरी नींद सोने के आरम्भ के दो-तीन घंटों में ही आता है, चेतनावस्था प्राप्त करने तक यह क्रमशः हलकी होती जाती है। अतएव स्वप्न अर्द्ध चेतनावस्था को बतलाते और प्रायः रात्रि के पिछले पहर में प्रातःकाल के समय दिखलाई देते हैं। जब कोई कहता है कि वह रात भर स्वप्न देखता है तो वह निश्चय ग़लती करता है। मनुष्य कुछ मिनटों में ही ऐसा स्वप्न देख सकता है कि उसने कई दिन अथवा वर्षों का समय व्यतीत कर दिया। वास्तव में स्वप्न देखनेवाला अपने स्वप्न के आरम्भ होने से पूर्व गहरी नींद में सो लेता है।

यद्यपि नींद के समय की अपेक्षा उसकी गहराई को अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है, तो भी यह सत्य है कि जब मनुष्य गहरी नींद में सोता है तो वह अधिक समय तक सोता है। दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य की निद्रा अत्यन्त गहरी हो जाती है तो जागृति के समय की दूसरी अवस्था धीरे-धीरे ही आती है, अतएव कम गहरी नींद में सोनेवाले का अपेक्षा अधिक गहरी नींद में सोनेवाले को अपनी नींद पूरी करके जागने में अधिक समय लगेगा। यह देखा जाता है कि स्वस्थ बच्चे, जो निस्सन्देह गहरी नींद में सोते हैं, एक बार ही कई-कई घण्टों तक सोते रहते हैं। उनको स्वप्न आते हैं, किन्तु जैसा कि प्रायः माताएँ देखती हैं वे नींद के बाद के भाग में आते हैं। अतएव बड़ी अवस्था के स्त्री-

पुरुष भी, जो शक्तिशाली बच्चे के जैसी गहन निद्रा ले सकते हैं, निश्चय से रात्रि को अधिक समय तक सोकर उसके परिणाम-स्वरूप असाधारण जीवनशक्ति प्राप्त करते हैं।

पुनः शक्ति प्राप्त करने के लिए बिना नींद भी शरीर को विश्राम देना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के विश्राम से यदि उसमें पेशियों को पूर्णतया ढीला छोड़ दिया जावे तो जीवनशक्ति में बिना हानि किये नींद कम की जा सकती है। अनिद्रा रोगवाले नींद से बेसुध हुए बिना भी शरीर को ढीला छोड़कर पर्याप्त मात्रा में पुनः शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में सभ्य जातियों में प्रचलित शारीरिक असमर्थता का कारण उनका रात्रि के समय देर तक जगना है। इससे स्नायुओं पर भी थोड़ा-बहुत वेग पड़ता है। इससे मस्तिष्क को पर्याप्त विश्राम नहीं मिलता और निद्रा के न आने से मस्तिष्क के द्वारा शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि नाड़ी-चक्र में बड़ी भारी निर्बलता आ जाती है। यद्यपि जागते समय का विश्राम भी उपयोगी होता है, किन्तु वह निद्रा का स्थान नहीं ले सकता। मस्तिष्क के उच्च कोटि के केन्द्रों और नाड़ी-चक्र को पूर्णतया ढीला छोड़कर विश्राम लेने का अवसर देना चाहिए, और यह अवसर केवल पूर्ण अचेतनावस्था से ही मिल सकता है।

निद्रा लाने के उपाय

यह पहिले कहा जा चुका है कि शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करने तथा कम जीवनशक्तिवालों को बलवानों की अपेक्षा नींद की आवश्यकता अधिक होती है। विशेषकर जिनको निद्रा कम और कठिनता से आती हो और अधिक नाड़ी-शक्ति की आवश्यकता हो, उनको तो अधिक नींद लानेवाले नियमों का पालन सावधानता-पूर्वक करना चाहिए। अनिद्रा रोग के रोगी प्रायः कहा करते हैं कि उनको नींद नहीं आती। उनको इस बात का विश्वास रहता है कि उनकी आँखों में लेशमात्र भी झपकी लगे बिना कई-कई

दिन और कई-कई सप्ताह निकल जाते हैं। किन्तु वे धोखा खाते हैं; क्योंकि यदि यह सत्य होता तो वे पाँच अथवा छः दिन तक भी जीवित नहीं रह सकते थे। तथ्य यह है कि वे अचानक ही लेटे-लेटे सो जाते हैं और जागने पर उनको अपने सोने का बिल्कुल पता नहीं चलता। साथ ही साथ, इन सब दशाओं में, नींद से वास्तव में थकावट उतारने के लिए उसे अधिक गहरा करने की आवश्यकता है। स्वस्थ पेशियों की थकावट के अच्छी निद्रा लाने के प्रभाव का वर्णन ऊपर किया ही जा चुका है। टहलने तथा बाह्य जीवन व्यतीत करने से प्रत्येक निर्बल नाड़ी वाले व्यक्ति को बच्चे के समान गहरी निद्रा आती है। थकान अत्यन्त अधिक नहीं चढ़ानी चाहिए, किन्तु केवल उतनी ही चढ़ानी चाहिए कि लेटने के आनन्द का पूर्णतया उपभोग कर लिया जावे। शरीर के इतना थके बिना नींद के आनन्द का वास्तव में उपयोग कभी नहीं किया जा सकता। इस कार्य के लिए, सायंकाल के समय, सोने से पूर्व कई मील तक टहलना चाहिए। यद्यपि श्वास को बल पहुँचाने और रक्तावर्त को अधिक करने के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से टहलने में कठोर परिश्रम करे तथा आन्तरिक अङ्गों को बलवान् बनावे, किन्तु अधिक नींद लाने के उद्देश्य से अन्तिम एक-दो मील धीरे-धीरे टहलना चाहिए। शीघ्रतापूर्वक गति से मस्तिष्क और नाड़ियों को बल मिलता है। धीमी गति का सन्तोषजनक प्रभाव पड़ता है। थके हुए के समान धीरे-धीरे टहलने से इच्छानुसार थकान चढ़ जाता है। ऐसी दशा में विश्राम की इच्छा होने लगती है।

गहरी नींद लाने में वायु का कम अथवा अधिक शुद्ध होना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उसके विषय में यहाँ विस्तार-पूर्वक वर्णन नहीं किया जावेगा। सोते समय श्वास गहरा नहीं हुआ करता। अतएव उस समय श्वास में जानेवाली वायु ताज़ी

और शुद्ध होनी चाहिए। यदि आप कमरे में सोते हों तो यथा-सम्भव सब खिड़कियों को खुला छोड़ दो। यदि खुली छत पर सो सको तो सबसे अच्छा है, अन्यथा छज्जे अथवा बरामदे में ही सो जाना चाहिए। ऐसी दशा में बढ़ी हुई जीवन-शक्ति आपको हानि की अपेक्षा लाभ अधिक करेगी। बाहर सोने का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उससे जीवन-शक्ति अधिक होती है, शक्ति बढ़ती है और शरीर अत्यधिक ताज़ा होता है।

गहरी नींद में, विशेषकर वात प्रकृतिवालों के लिए, रक्तावर्त भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नींद की शिकायत प्रायः करते रहनेवालों के मस्तिष्क में कुछ न कुछ रक्त जमा हो जाया करता है; उनको कभी अपने हाथ और कभी हाथ और पैर दोनों ही ठण्डे मालूम दिया करते हैं। इस दशा का प्रतीकार पैरों को उष्ण रखने से किया जा सकता है। किसी-किसी को सोने से पूर्व आधा गिलास उष्ण दूध अथवा उष्ण जल पीने से ही रक्त मस्तिष्क से उतर कर नींद आ जाती है। सोते समय पैरों को उष्ण जल से धोने से भी वही परिणाम होता है, अथवा इसके स्थान में उष्ण जल की थैली, अथवा फ़लालैन में लपेटे हुए कपड़े पर फेरने के उष्ण लोहे, अथवा एक उष्ण ईंट से भी उसी प्रकार काम लिया जा सकता है। इस रोग के किसी किसी भारी रोगी के पैरों में उष्णोपचार करते समय सिर के नीचे ठंडी थैली रखनी पड़ती है।

निर्बल नाड़ियोंवाले रोगियों के लिए सोने से आध घण्टा पूर्व शरीर के तापमान के अनुसार स्नान करना अधिक उपयोगी होता है। अत्यन्त उत्तेजना, क्रोध अथवा स्नायु की निर्बलता में स्नान से अत्यधिक लाभ होता है। टब को ९६ अथवा ९८ अंश फ़ैरेनहीट जल से भर लो। इस जल में घण्टों तक बिना किसी

प्रकार की हानि के अंदेशे के बैठा जा सकता है; क्योंकि ऐसे जल से न तो निर्बलता आती और न उत्तेजना ही होती है। स्नायुओं पर उसका प्रभाव कोमल पड़ता है; यह हिस्टीरिया के आक्रमण को रोकता तथा स्नायु-सम्बन्धी अन्य रोगों में भी लाभदायक है। अस्पतालों में पागलों के लिए यह स्नान इतना अधिक उपयोगी सिद्ध होता है कि इससे प्रायः गद्दीदार सेल (Padded Cells) और सीधी जाकेटों (Straight Jackets) के उपयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह अनिद्रा रोग के रोगियों के लिए भी इसी प्रकार उपयोगी है। साधारण उद्देश्य के लिए आध घंटे का स्नान पर्याप्त होता है।

नाड़ियों को शान्त करने का एक और उपाय वायु-स्नान है। इसका वर्णन इस ग्रन्थ में पीछे किया जा चुका है, किन्तु यह अनिद्रा रोग में नाड़ियों को शान्त करने में अत्यंत उपयोगी होता है। यदि कमरा पर्याप्त उष्ण है तो सोने से पूर्व आध घंटे तक वायु-स्नान अत्यंत सुगमता-पूर्वक किया जा सकता है।

अनिद्रा रोग वालों के लिए एक और उपाय रात भर वायुस्नान करते हुए लेटे रहना है। शरीर के ऊपर वस्त्र ओढ़कर न सोने से आप वायु भरे कमरे में ही सो जायँगे। इसके लिए शरद् ऋतु में उष्ण वस्त्रों को चारों ओर तम्बू के समान इस प्रकार तानना पड़ता है कि कोई भी वस्त्र शरीर से छूने न पावे। सर्दियों में इसके अंदर प्रवेश करते ही उष्णता नहीं लगती, किन्तु यदि वस्त्र पर्याप्त मोटा है और वायु बाहर ही रुकी हुई है तो पूरी रात भर उष्ण और सुविधा-जनक वायु-स्नान मिलता रहता है। इस स्नान में सिर को वस्त्र से बाहर खुला रखना चाहिए। इस प्रकार सोते समय कोई बनियान आदि भी नहीं पहिनना चाहिए।

ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र

सोते समय वस्त्र ओढ़ने का प्रश्न भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अनेक व्यक्ति पैरों के ठण्डा होने के कारण नहीं सो सकते और अनेक को ओढ़ने के वस्त्र अधिक होने के कारण अधिक उष्णता का अनुभव होता रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि पैरों को उष्ण रखने के लिए वस्त्रों के बोझे के नीचे शरीर को दाब दिया जावे। वस्त्र यथासम्भव कम से कम ओढ़ो और तब भी शरीर की उष्णता को बनाये रक्खो। इस कार्य के लिए उत्तरी समुद्र (North Sea) में पाई जानेवाली ईडर (Eider) नाम की बत्तक के रोवें से भरे हुए गद्दे तथा रज़ाई अच्छे रहते हैं; क्योंकि वे हल्के होने के साथ-साथ उष्णता को अधिक समय तक बनाये रख सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति सोने से पूर्व अपने पैरों को उष्ण और रक्तावर्त को ठीक कर ले तो उसको शरद्-ऋतु में भी इस प्रकार का कष्ट नहीं हो सकता। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि अपर्याप्त वस्त्रों में ठण्ड लगा ली जावे, किन्तु इसका अभिप्राय उष्णता को रक्षा करते हुए कम से कम वस्त्र-सेवन करने का है।

यूरोप में आजकल पक्षियों के परों के बिछौनों का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। किन्तु उसमें स्वच्छता न होने और उसके अत्यधिक उष्ण होने के कारण वह लाभ के स्थान में हानि ही अधिक करता है। इस विषय में बारीक ऊन के बने ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र अच्छे रहते हैं। उष्णता के लिए रुई कम उपयोगी होती है, साथ ही पशुओं से मिलनेवाले ऊन, रोवाँ और पर जैसे पदार्थ अत्यधिक उष्ण होते हैं। सर्दियों में रुई के वस्त्र अत्यन्त भारी होते हुए भी ठण्डे रहते हैं; किन्तु ऊन के कम्बल, ऊन भरे हुए लिहाफ़-बिछौने अथवा रोवाँ भरे हुए लिहाफ़-बिछौने गरम और हलके रहते हैं। सर्दियों में यह ध्यान रखना चाहिए कि वस्त्र

उष्ण होने के साथ-साथ हलके भी हों। ऊनी वस्त्रों में यह आराम सबसे अधिक होता है।

तकिये का सेवन सदा ही करना चाहिए। सीधे चित लेटे रहने पर तकिया नहीं लगाना चाहिए। इससे फिर आगे को झुककर कन्धे गोल हो जाते हैं। तकिया तभी उपयोगी होता है, जब या तो करवट से लेटा जावे अथवा सीधे लेटे हुए भी सिर दूसरी ओर को झुका हो।

सोने का ढङ्ग

सोने में करवट से सोना सबसे अच्छा रहता है, फिर चाहे बाईं करवट से सोया जावे अथवा दाईं से। करवट से लेटकर शरीर के ऊपर के भाग को थोड़ा आगे को कुछ, सीने और पहुँचे के आधार पर, झुका देना चाहिए। इस प्रकार एक कोहनी पीठ के पास जा पड़ेगी और दूसरा हाथ नीचे आ जावेगा। ऊपर के पैर का घुटना कुछ आगे को निकल जावेगा। इस प्रकार लेटने से शरीर को तो विश्राम मिलता ही है, पसीना भी अच्छा आता है। इस प्रकार लेटने से वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी (Diaphragm) से नीचे के अङ्ग लटके रहेंगे। उदर तथा अन्य अङ्ग वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी से नीचे को खिंचे रहेंगे, जिससे फुफ्फुसों और विशेष कर उनके नीचे के भाग को फैलने के लिए अधिक स्थान मिल जावेगा। इस प्रकार आकर्षण के साधारण प्रभाव के द्वारा रात्रि भर श्वास में अधिक वायु जा सकेगी। करवट चाहे जब सुगमता से बदला जा सकता है। निर्बल हृदयवालों को यदि असुविधा हो तो बाईं करवट से कम लेटना चाहिए।

नींद की सुन्दरता

अनेक व्यक्तियों को नींद की सुन्दरता के विषय में भी वार्तालाप करता हुआ देखा जाता है। यह तो प्रायः कहा जाता है कि "अर्द्धरात्रि से पूर्व एक घंटे की नींद अर्द्धरात्रि के बाद के दो

घण्टों को नींद के समान होती है।" अनेक लेखकों का कहना है कि पर्याप्त नींद चाहे जिस समय भी ले लेनी चाहिए। किन्तु यह निश्चय है कि शीघ्र सोने का प्रभाव सौन्दर्य पर भी अच्छा पड़ता है।

एक प्रकार से यह कहना उचित ही है कि अर्द्धरात्रि से पहिले सोना अधिक लाभदायक है। रात्रि को देर में सोने से शरीर अधिक थक जाता है। अतएव अर्द्धरात्रि के पश्चात् सोने से शरीर को उसका पूरा लाभ नहीं हो सकता। कम से कम कृत्रिम प्रकाश का तो नाड़ियों पर बड़ा हानिकर प्रभाव पड़ता है। इस हानिकर प्रभाव का पता बड़ी अवस्था में लगा करता है, उसके अतिरिक्त देर में सोने से प्रातःकाल सूर्योदय होने पर भी सोना पड़ता है। यह अवश्य है कि कुछ प्राणी रात्रिचर भी हैं। मनुष्य को भी बहुत रात्रि में काम करने का अभ्यास हो गया है, किन्तु प्रायः सभी प्राणी और मनुष्य अनेक युगों से रात्रि में सोते आ रहे हैं। हमारी इस प्रकृति का प्रभाव हमारे विश्राम करने के ढङ्ग पर बड़ा भारी पड़ता है। सम्भवतः प्रकाश के प्रश्न का भी इससे बहुत कुछ सम्बन्ध है। दिन का प्रकाश उत्तेजक होता है। प्रकाश रासायनिक कार्य करता है। यह प्राणियों को कार्य करने को उत्तेजना देता है। अन्धकार विश्राम की प्रकृति को बढ़ाता है। निस्संदेह प्रकाश के इस प्रश्न का मध्य रात्रि से पूर्व सोने के लाभों से बड़ा भारी सम्बन्ध है। इस विषय में एक पुरानी उक्ति है—

"जल्दी सोना, जल्दी उठना,
स्वस्थ, धनी, पण्डित बनना।"

सम्भव है कि इस उक्ति के अनुसार सभी को धन और बुद्धि की प्राप्ति न होती हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इससे स्वास्थ्य और जीवनशक्ति दोनों की ही उन्नति होती है।

——

अठारहवाँ अध्याय

स्वास्थ्य अथवा रोग की प्रधान शक्ति

मस्तिष्क

मस्तिष्क के प्रभाव के द्वारा स्वास्थ्य को बनाने तथा रोगों के अच्छा करने के अनेक-अनेक चमत्कार सुने जाते हैं। मस्तिष्क वास्तव में ही सब से बड़ी शक्ति है। उसको निस्सीम तो नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भूखा मनुष्य छत्तीस प्रकार के व्यञ्जनों को खाने और उनसे लाभ प्राप्त करने की कल्पना नहीं कर सकता, न मानसिक शक्ति के द्वारा किसी मृत व्यक्ति को ही जीवित किया जा सकता है।

किन्तु हमको स्मरण रखना चाहिए कि अनेक रोग तो केवल काल्पनिक ही होते हैं; और कुछ उनमें बिल्कुल काल्पनिक न होते हुए भी नियम-विरुद्ध धोखे के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुए भय से होते हैं। इस प्रकार के रोग मानसिक शक्तियों के साथ मुक़ाबला होने पर अनेक बार अच्छे हो जाते हैं। अनेक अवस्थाओं में तो मानसिक स्थिति ही रोग का कारण होती है। आप अधीर, निराश और बहुत कुछ निराश्रय हो जाते हैं। भविष्य आपको अन्धकारपूर्ण दिखलाई देने लगता है। जीवन नीरस हो जाता है। उस समय सभी अभिलाषाएँ दब जाती हैं और उत्साह मन्द पड़ जाता है। इस प्रकार के मस्तिष्क में किसी प्रकार का भी रोग हो जाना कुछ कठिन नहीं होता।

बल, ठीक प्रकार की जीवनशक्ति और स्वास्थ्य जीवन की सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तुओं से सम्बन्ध रखनेवाले तत्त्वों और शक्तियों को प्रकाशित करते हैं। प्रसन्नता और स्वास्थ्य

अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हैं। यदि आप स्वस्थ हैं तो आपका उदास और निकम्मा रहना अत्यन्त कठिन है और यदि आप उदास और मानसिक कष्ट से पीड़ित हैं तब तो स्वस्थ रहना और भी कठिन है।

अतएव सदा आशान्वित रहना स्वास्थ्य का बड़ा बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय है। यदि मन उदार है और आकाश में मेघ छाये हुए हैं तो अपनी आत्मा में प्रकाश को विकसित करो। सदा प्रसन्न रहने का उद्योग करो। दूसरों को प्रसन्न रखने का उद्योग करने से आप स्वयं भी सदा प्रसन्न ही रहेंगे; क्योंकि दूसरों की सहायता करने से हम अनिवार्य रूप से अपनी सहायता भी करते हैं। आचरण का निर्माण करते समय हम अपनी नैतिकता में उन्नति करते हुए अपनी मानसिक और शारीरिक स्थिरता को बढ़ाते हैं। अतएव अपनी सहायता करने का सबसे उत्तम ढङ्ग दूसरों को सहायता करना है।

धर्म-प्रचार में इस बात का अच्छा उदाहरण देखने को मिलता है। धर्म-प्रचारकों ने प्राचीन काल में विशुद्ध धार्मिक भावना से अनेक रोगियों को चङ्गा किया है। इन कार्यों से सिद्ध है कि मस्तिष्क एक शासक शक्ति है जो पाप और पुण्य दोनों के लिए कार्य करता है। उनसे सिद्ध होता है कि आपके विचार या तो आपकी जीवन-शक्ति को बनाते अथवा बिगाड़ते हैं। किसी सीमा तक यह भी कहा जा सकता है कि 'विचार ही कार्य होते हैं,' तथा उत्तम विचार मानसिक अथवा शारीरिक शक्ति की उन्नति करते हैं और बुरे विचारों का उससे उल्टा प्रभाव पड़ा करता है। हममें से प्रत्येक को अपने मन में प्रतिदिन यह विचार लेना चाहिए कि हमारे मन के विचारों की प्रकृति रचनात्मक है अथवा विनाशात्मक।

आपके विचार आपको निश्चय से ही नष्ट कर सकते हैं। वे आपको बन्दूक़ की गोली के ही समान जान से मार सकते हैं।

इस घटना को अपने सम्मुख अत्यन्त निश्चित रूप में रक्खो और अपने विचारों को प्रतिदिन अपनी जीवनशक्तियों को एकत्रित करने का साधन बनाओ। अनेक अवसरों पर अत्यन्त हानिकर भाव भी मन में उत्पन्न हो जाते हैं।

चिन्ता

हम सभी किसी सीमा तक अच्छी अथवा बुरी, प्रकृति के दास हैं। उदाहरणार्थ, चिन्ता करना भी एक प्रकृति है; क्योंकि चिन्ता करने की वास्तव में प्रकृति पड़ जाती है। अच्छा तो यह है कि अच्छी प्रकृति का दास बना जावे। चिन्ता करने की संक्रामक प्रकृति वाले को उसके उतार के मानसिक उपायों की आवश्यकता है। चिन्ता से किसी को कभी लाभ नहीं हुआ; सहस्रों व्यक्ति चिन्ता में सूखकर ही मर गये। किसी समस्या पर गम्भीरता से अधिक समय तक विचार कर उसका बुद्धिमत्तापूर्ण निष्कर्ष निकालने को 'चिन्ता' न कहकर 'विचार' कहना चाहिए। चिन्ता तथा एकान्त विचार में बड़ा भारी अन्तर है। चिन्ता की विशेषता अपने कल्पित कष्टों के आगमन का मन में उत्सुकतापूर्वक दृश्य देखना है। चिन्ताशील व्यक्ति तनिक-तनिक सी बातों को लेकर बात का बतंगड़ बनाकर उनसे पर्वत जैसी कल्पित कठिनाइयाँ खड़ी कर लेता है। अनेक व्यक्तियों की प्रकृति अपने जीवन में अनुभूत बुरे अनुभवों को ही बारबार परीक्षा करने की पड़ जाती है। इस प्रवृत्ति का परिणाम घातक होता है। ऐसे व्यक्तियों को अतीत काल को भूल जाना चाहिए। भूलने की प्रकृति का अभ्यास कर अपना स्वास्थ्य बनाओ, जिससे सदा प्रसन्न रह सको। अतीत काल के विचारों से अपने मस्तिष्क को शून्य करके उसे वर्तमान और भविष्य-सम्बन्धी उन्नतिशील विचारों से भर दो। चिन्ता वास्तव में एक मानसिक विष होती है।

शोक

अपने लिए स्वयं ही शोक करना एक और दोष है। इसका चिन्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत से व्यक्तियों की प्रकृति अनेक दुःख भोगने के कारण इस प्रकार की पड़ जाती है। इस प्रकार के व्यक्तियों को अपने भोगे हुए कष्टों का चित्र उतारने में विशेष रूप से आनन्द आता है। उनसे अधिक कष्ट कोई नहीं भोगता। वे अपने भयंकर अतीत की कहानियाँ सुनाकर अपने मित्रों को भी भयभीत किया करते हैं। यह प्रकृति अत्यन्त हानिकर है। खेदजनक पिछले अनुभवों को बार-बार क्यों स्मरण किया जावे? उस शोकपूर्ण अतीत को अपने दैनिक जीवन में स्थान देकर जीवन को अधिक कटु क्यों बनाया जावे? अपने दुःख, कष्ट और निराशाओं को अपने मित्रों और परिचितों में क्यों बाँटा जावे? प्रत्येक मनुष्य में अपना प्रकाश दूसरों पर फेंकने की शक्ति होती है। आप दुःख या सुख में दिन व्यतीत कर सकते हैं। यदि आप अपने किसी मित्र को अपने साथ किसी बात में सम्मिलित होने का निमंत्रण देते हैं तो इससे यही कल्पना की जाती है कि आप उसकी प्रसन्नता को बढ़ावेंगे। अतएव आपको अपने जीवन के कष्टों का भाग अपने मित्रों तथा परिचितों को नहीं देना चाहिए। अतएव यदि आपको आत्मग्लानि होती है, आपके अतीत के कष्ट आपको चैन नहीं लेने देते तो अपने मित्रों के हृदय को तो उनसे कष्ट न पहुँचाइए। यदि आप उन विचारों को किसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहते तो उनको कमसे कम अपने में ही सीमित रखिए। अच्छा तो यही है कि ऐसे विचारों का पूर्णतया त्याग कर दिया जावे। अतीत को भूलकर भविष्य में विचरण करो। भविष्य की कल्पना में विचरने वालों और भविष्य के लिए ही जीनेवाले स्त्री और पुरुष निश्चय से आशावादी होकर सदा प्रसन्न रहेंगे। इस प्रकृति को अवश्य बना लेना चाहिए।

क्रोध

क्रोध भी एक मानसिक विष है। इसका त्याग विषैले सर्प के समान करना चाहिए। वैज्ञानिकों का कहना है कि सर्प में विष क्रोध के कारण अशुद्ध रक्त-संचार से बल पाकर विकसित होता है, क्योंकि सरीसृपों (Reptiles) में धमनियों सम्बन्धी शुद्ध रक्त अपूर्ण रूप से बने हुए हृदय में अशुद्ध विषाक्त रक्त में मिल जाता है। वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि क्रोध मनुष्य-शरीर से निकलनेवाले पसीने में भी विष उत्पन्न करता है। यह बात सत्य हो अथवा न हो, किन्तु क्रोध निश्चय से ही मानसिक विष है। इससे स्नायुओं की बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती है। कभी-कभी क्रोध उचित भी होता है, किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। ऐसे मनोभावों पर शासन करने का अभ्यास डालो। अपने भावों और मानसिक दशाओं को अपने वश में रक्खो। व्यर्थ के क्रोध का निश्चित और अन्तिम रूप से त्याग कर दो। क्रोध का अभिप्राय है मन का शासन में न रहना। इसको विनाशात्मक शक्ति समझकर सावधानी से त्याग करना चाहिए।

घृणा

घृणा बहुत कुछ क्रोध का ही पर्यायवाची है। उसी को संक्रामक रूप में क्रोध भी कहा जा सकता है। घृणा के साथ व्यक्तिगत शत्रुता के मिल जाने से अत्यन्त विनाशक प्रभाववाले भाव उत्पन्न होते हैं। किसी से घृणा ही क्यों की जावे? किसी 'कल्पित शत्रु' से बचने के लिए भी अपनी स्नायु-शक्तियों को क्यों नष्ट किया जावे? आपका यह विचार हो सकता है कि किसी ने आपको धोखा दिया। आप इसी के प्रतीकार का उपाय सोचते हुए रातों जागते रहते हो। इस विषय का प्रत्येक मानसिक उद्योग केवल शरीर, मन और आचरण के लिए ही हानिकारक नहीं होता, किन्तु इससे स्नायुओं की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। अपने जीवन

को उपयोगी कार्यों में इतना अधिक व्यस्त रखना चाहिए कि इस प्रकार के व्यर्थ कार्य के लिए समय ही न मिले। इस प्रकार अपनी स्नायु-शक्तियों को नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है।

लोभ

इसके पश्चात् लोभ का विष है। अनेक महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों का उद्देश्य आर्थिक लाभ प्राप्त करना होता है। वे बराबर अधिकाधिक धन कमाने की मानसिक कल्पनाओं में ही वर्षों तक प्रतिदिन उड़ते रहते हैं। किन्तु जीवन में कोई वस्तु धन से भी अधिक है। उदाहरणार्थ स्वास्थ्य धन से सहस्रगुना और आत्म-सम्मान लाखगुना अधिक क़ीमती है। अपने को दास बनाने-वाले इस प्रकार के झगड़े को अपने आत्मा में मत मचने दो। उच्च कोटि की मानवी शक्तियों की उन्नति में बाधा डालनेवाले भावों को अपने हृदय में स्थान मत दो।

समालोचक वृत्ति

शिकायत तथा समालोचना करने की प्रकृति का भी त्याग कर दो। आपको अपने पास की प्रत्येक वस्तु के लिए धन्यवाद देना चाहिए। यदि आप इस विचार को न भी लेकर प्रतिदिन भोगे हुए आनन्द पर प्रसन्न होते रहोगे तो उसका मानसिक प्रभाव भी बड़ा उत्तम पड़ेगा। अपने पास की वस्तु के लिए धन्यवाद देने का यह अभिप्राय नहीं है कि अधिक प्राप्त करने का उद्योग न किया जावे। अधिक उत्तरदायित्व बढ़ जाने पर असन्तोष नहीं करना चाहिए। कैसे ही वातावरण में रहने पर भी शिकायत करने की प्रकृति को छोड़ दो। इससे जीवन में केवल निराशा और उदासी ही आ जाती है। आपको जैसी भी छोटी अथवा बड़ी परिस्थिति अथवा सुविधा मिले, उसके लिए धन्यवाद दो। इसका आपके स्वास्थ्य पर बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

ईर्ष्या

ईर्ष्या का भी, स्वार्थ से उत्पन्न होने के कारण, त्याग कर देना चाहिए। दूसरों की समृद्धि को देखकर उनसे ईर्ष्या मत करो। प्रसन्नता परिश्रमपूर्वक सम्पादन करने से ही अच्छी लगती है। जीवन का बड़े से बड़ा आनन्द भी परिश्रमपूर्वक हो अत्यन्त बुद्धिमत्ता से प्राप्त किया जाता है। बड़ी भारी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में पानेवाला उससे कुछ लाभ नहीं उठा सकता; क्योंकि अधिक आनन्द धन के लिए किये जानेवाले परिश्रम में होता है, न कि उसकी प्राप्ति में। आपका उद्देश्य सत्य की प्राप्ति होना चाहिए। सत्य सब से सुन्दर है। इसका शक्ति के साथ भारी सामञ्जस्य है। अपनी समस्त महत्त्वाकांक्षाओं अथवा आशाओं को सत्य से ही पूरा करो। किसी-किसी समय यह इस उद्देश्य को जानेवाला मार्ग बड़ा कठिन और चक्करदार होता है। सत्य के मार्ग पर चलते हुए आप पर बड़ी आपत्तियाँ आ सकती हैं, किन्तु आपके प्रत्येक उद्योग के लिए आपको पर्याप्त पारितोषिक मिलेगा।

अपने मार्ग से च्युत न होओ। उस पर केवल अकेले ही डटे खड़े रहो। तोते के समान किसी की नक़ल मत करो। सर्वत्र अपनी व्यक्तिगत विशेषता को प्रकट करो। औरों को अपने ढङ्ग पर अपना जीवन व्यतीत करने दो, किन्तु तुम अपना जीवन अपने ढङ्ग पर व्यतीत करो। हमारे आजकल के स्कूल प्रायः एक ढङ्ग के ढले हुए विद्यार्थी तैयार कर रहे हैं। वे स्कूल शिक्षा-सम्बन्धी ईंटों के कारखाने (भट्ठे) हैं, जिनमें प्रत्येक ईंट पर एक सी मुहर लगी रहती है। उनमें व्यक्तित्व को बिलकुल कुचल दिया जाता है। बच्चा मिट्टी के समान नहीं होता कि उसको गीली करके चाहे जो रूप दे दिया जावे। वह बहुमूल्य रत्न के समान होता है जिसको उसकी अपनी प्रकृति के अनुसार बनाना

पड़ेगा। प्रत्येक मानव-आत्मा एक बिना कटा हीरा होता है। उसमें प्रायः ऐसी योग्यता और शक्तियाँ होती हैं कि उनका विकास करने पर ऐसे-ऐसे अनोखे परिणाम निकल सकते हैं, जिनकी आशा किन्हीं विशेष-व्यक्तियों से ही की जा सकती है। अतएव स्वयं अपने रूप ही बनो। अपने सिर को तना हुआ रक्खो, अपने कन्धों को पीछे को रक्खो। इस बात को स्मरण रक्खो कि पृथ्वी और उसके ऊपर की प्रत्येक वस्तु तुम्हारी ही है। इस प्रकार के भावों से भर जाना अत्यन्त उपयोगी है। यही योग्य मानसिक अवस्था है। जीवन एक कठोर युद्ध है। उसमें बलवान् और साहसी को ही पारितोषिक मिलता है। अपने जीवन में प्रत्येक शक्ति को प्राप्त करने का पूर्ण निश्चय कर लो। अपनी पूरी योग्यता और शक्तियों को अधिक से अधिक विकसित करो, तब तुमको इस बात का विश्वास हो सकेगा कि तुम्हारे मन में आनेवाला प्रत्येक विचार तुम्हारी प्रकृति में विनाशक न होकर रचनात्मक सिद्ध होगा।

——

उन्नीसवाँ अध्याय

हास्य-चिकित्सा

हास्य के शरीर तथा मन पर पड़नेवाले शरीरतत्त्व-विज्ञान-सम्बन्धी प्रभावों को जनता न तो समझती और न उनकी सराहना ही करती है। 'हास्य-चिकित्सा' वास्तव में एक उत्तम चिकित्सा है; क्योंकि यह प्रणाली अत्यन्त उपयोगी है। आपत्ति में पड़ा हुआ मनुष्य भी यदि लोगों को हँसाते-हँसाते लोट पोट कर दे तो आपत्ति के दुःखपूर्ण परिणाम से बच जाता है।

जीवन में अनेक ऐसे अवसर हो सकते हैं, जब हँसना एक दम असम्भव अथवा असम्भव जैसा होता है। तो भी प्रत्येक

अवसर पर हास्य के भाव को प्रोत्साहित करने का प्रत्येक उपाय करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हँसी से जीवनशक्ति के बढ़ने में बड़ी भारी सहायता मिलती है। यहाँ तक कि इससे वीर्य-शक्ति भी बढ़ती है। हास्य से ही आशावाद की ओर प्रवृत्ति होती है। हास्य जीवन के उज्ज्वल अंश को ही देखता है। हँसते समय मन का सूर्य आकाश को ढकनेवाले बादलों का बिल्कुल ध्यान किये बिना चमकता रहता है। आप जीवन-शक्ति के निर्माण के लिए चाहे जिस उद्योग में लगे हुए हों, किन्तु लगातार गम्भीर कभी मत बनो।

प्रतिदिन एक अथवा अनेक बार हँसने का समय निकाला करो। यह अवश्य है कि आवश्यकता से अधिक हँसने से हास्य से भी थकावट आ जाती है; किन्तु इसका परिणाम हानिप्रद कभी नहीं होता। बच्चे बिना खेले बराबर काम करते रहने से निकम्मे हो जाते हैं। हँसने से स्नायु ढीले होकर शरीर में फिर शक्ति आ जाती है। यदि इस प्रकार का आनन्द किसी अन्य प्रकार से नहीं ले सकते तो किसी 'कौतुकमय खेल' में जाओ। अधिक आनन्दवाले किसी नाटक में जाओ। ऐसे अवसरों पर शोकान्त अथवा शोकपूर्ण नाटकों को नहीं देखना चाहिए। कुछ विशेष व्यक्तियों को दूसरों के कष्ट में ही आनन्द आया करता है, किन्तु इस प्रकार के भावों में कोई बुद्धिमत्तापूर्ण बात समझ में नहीं आती।

रोने का प्रभाव

किन्हीं विशेष परिस्थितियों में यह बात ठीक हो सकती है। हँसने के समान रोने से भी नसें ढीली होकर उनका शरीरतत्त्व-विज्ञान-सम्बन्धी प्रभाव पड़ता है। किन्तु इस नियम को स्नायु-सम्बन्धी विशेष उत्तेजना की दशा में ही लागू किया जा सकता है। जब

नसों पर इतना ज़ोर पड़े कि उनके चटखने की परिस्थिति आ जावे तो रोने से वे ढीली हो जाती हैं और चैन मिल जाता है। जब नसों पर ऐसा ज़ोर पड़े कि हँसना एकदम असम्भव हो तो रोने से ही लाभ होता है। श्वास के ऊपर इन दोनों दशाओं में एक सा प्रभाव पड़ता है। दोनों में वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी तथा श्वास का कार्य बहुत कुछ एक सा ही होता है। किसी व्यक्ति को पीछे से देखकर यह नहीं बतलाया जा सकता कि वह रो अथवा हँस रहा है। दोनों में नाड़ियाँ ढीली हो जाती हैं, दोनों में फुप्फुसों की फुर्ती बढ़ जाती है और दोनों में ही वक्ष-उदर-मध्यस्थ-पेशी तथा सम्पूर्ण श्वास-प्रक्रिया का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

यह अवश्य है कि रोने से जी हलका हो जाता है और बड़े भारी शोक से उद्धार हो जाता है, किन्तु यह कहना उचित नहीं है कि रोने से आनन्द आता है।

हँसने का प्रभाव

जहाँ तक आनन्द के चिह्नों का सम्बन्ध है, हास्य स्वयं एक आनन्द है। इससे अत्यन्त अधिक आनन्द प्रकट होता है। इससे व्यक्ति की सारी प्रकृति विचलित होकर शरीर के प्रत्येक भाग में जीवन-शक्ति बढ़ती है। हँसानेवाले आमोद-प्रमोदों का आधार शरीरतत्त्व-विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। संसार भर में हँसने के लिए बड़ा भारी धन ख़र्च किया जाता है। धन का यह सदुपयोग है। थका हुआ व्यापारी अथवा परिश्रम से चकनाचूर श्रमिक इस आनन्द में फिर ताज़ा हो जाता है। जान बनी (John Bunny), चार्ली चैप्लिन, दीक्षित और बुवा साहिब जैसे हास्यरस के अभिनेता वास्तव में मनुष्य-जाति के स्वास्थ्य में उन्नति करके उनकी जीवन-शक्ति को बढ़ाते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक दिल खोलकर हँसने की शक्ति को खो चुका है वह बड़ा अभागा है। जब मनुष्य अपने जीवन में ऐसे भारी कष्टों और दुःखों को उठा लेता

है कि उसको कभी हँसी नहीं आती तो उसकी दशा अत्यन्त भयङ्कर हो जाती है।

इस बात को कभी मत भूलो कि सब से उत्तम हास्य भी सीधा हृदय के पास वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी से ही आता है। इस बात को कभी मत भूलो कि हास्य केवल मानसिक भाव ही नहीं वरन् एक व्यायाम भी है; श्वास का तो यह अनुपम व्यायाम है, हँसने में श्वास के ख़ूब खुल जाने से वक्ष-उदर-मध्यस्थ-पेशी ख़ूब काम करती है। इससे अन्दर के सभी अङ्गों का अत्यन्त उच्च कोटि का व्यायाम हो जाता है। यदि आप ख़ूब और पर्याप्त हँसते हो तो आपको पूर्णतया स्वस्थ रखने के लिए वही व्यायाम पर्याप्त है।

युवावस्था में हृदय में आनन्द की हिलोरें आया करती हैं। यदि इस युवावस्था की भावना—हास्यप्रियता—का अपने अन्दर स्थायी रूप से रक्षा की जावे तो युवावस्था सदा बनी रहती है। इस प्रकृति को बढ़ाना चाहिए। जब आप न हँसने योग्य परिस्थिति पर पहुँच जाते हो तो आपकी भावना वृद्ध हो जाती है, भावना में वृद्ध हो जाने पर कोई भी पुरुष युवक बना नहीं रह सकता।

बीसवाँ अध्याय

सङ्गीत—अत्यन्त पौष्टिक औषध

स्रष्टा ने सङ्गीत की सृष्टि आनन्दप्रद भावों को जागृत करने के लिए की थी। आनन्द का उद्रेक आवश्यकता से अधिक होने पर उसका सङ्गीत के रूप में प्रस्फुटित होना बिल्कुल स्वाभाविक है। इसी लिए यह गाते समय आपका शारीरिक उद्योग, मानसिक रति, आनन्द आदि भावों को उत्तेजित करता है। कुछ

शारीरिक आसनों और व्यायामों के मानसिक दशा पर प्रभाव डालने का वर्णन पहिले ही किया जा चुका है। यदि सङ्गीत वास्तव में ही आनन्द के प्रकट करने का नाम है तो मानसिक विकार की दशा में भी किसी को गाने के लिए विवश करने से उसका शोक दूर होकर उसको आनन्द ही मिलना चाहिए।

किन्तु सङ्गीत की उपयोगिता मस्तिष्क पर प्रभाव डालने में ही नहीं है। यह एक शारीरिक व्यायाम है, जिसमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है। यह वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी को जागृत करता है। उससे रक्त-सञ्चार अधिक होता है और पाचन-शक्ति अच्छी होती है। अतएव यह मानसिक बल के साथ शारीरिक बल भी प्रदान करता है। अतएव इस शारीरिक परिश्रम को अवश्य करना चाहिए।

इस बात को स्मरण रक्खो कि गाने के स्वर का अभ्यास करने में फुप्फुसों को विशेष रूप से फैलाना पड़ता है। इसका यह अभिप्राय है कि वाक्‌शक्ति से कार्य लेते समय प्रत्येक बार श्वास-क्रिया का अच्छा व्यायाम हो जाता है। इसका प्रभाव केवल फुप्फुसों पर ही न पड़कर वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के कार्य पर भी पड़ता है, जिससे अन्दर के तत्सम्बन्धी अङ्गों का मर्दन होकर उनमें उत्तेजना आती और शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार के व्यायाम के महत्त्व का अधिक वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

यदि आपको सङ्गीत की नियमपूर्वक शिक्षा नहीं मिली है तो भी अपनी शक्ति भर ख़ूब गावें—प्रत्येक अवसर पर गावें। यदि आपका स्वर मधुर न हो तो भी हतोत्साह न हों। इस बात को ध्यान में रक्खें कि गायन शुद्ध और सरल व्यायाम है। अपने मित्रों को समझ जाने दो कि आपको अपना स्वर पसन्द नहीं है, किन्तु आप इस व्यायाम को धार्मिक नियम के अनुसार करते हैं।

यदि आपको संगीत की नियमित शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सके तो आपका अहोभाग्य है। केवल बाजा बजाने की अपेक्षा गाने का शरीर और मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है।

गायन का व्याख्यान-शक्ति पर प्रभाव

गायन के अतिरिक्त भी स्वर उत्तम होना बड़ी अच्छी बात है। जितना उद्योग आप सङ्गीत के सीखने में करेंगे उतनी ही आपकी बोलने की शक्ति भी बढ़ जावेगी। प्रभावशाली व्याख्यानदाताओं का स्वर सदा ही सङ्गीतमय नहीं होता, किन्तु सभी अच्छे गायकों का स्वर भाषण देने में भी अच्छा होता है। अतएव गाना सीखने के उद्योग से आपकी व्याख्यान-शक्ति भी बढ़ेगी।

इसके अतिरिक्त, गायन सीखने में व्यतीत किये हुए सारे समय को मनबहलाव का समय समझना चाहिए। यदि आप स्वर-साधना का व्यसन डाल लें तो और भी अच्छा है। अपने को भूलने का इससे अधिक उत्तम और कोई उपाय नहीं है। गाने के समय आपका ध्यान कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता, अतएव मानसिक थकावट को उतारने का इससे अधिक उत्तम और कोई उपाय नहीं है।

आपकी मानसिक स्थिति से परिणाम में बड़ा भारी अन्तर आ जाता है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, संगीत आनन्द को प्रकट करने का नाम है। ठीक-ठीक गाने से आप आनन्द में भर जाते हैं। यद्यपि आरम्भ में आपका गायन केवल जबर्दस्ती और यन्त्रीय होगा, किन्तु आपको उसमें शीघ्र ही विशेष आनन्द आने लगेगा।

गाना यथासम्भव ठीक-ठीक चाहिए। अच्छा हो कि इस सम्बन्ध में या तो किसी विशेषज्ञ अथवा किसी पुस्तक से शिक्षा ले ली जावे। इस छोटे से अध्याय में इस सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन

नहीं किया जा सकता, किन्तु गायन-विशेषज्ञ सब कहीं थोड़ा परिश्रम करने पर ही मिल सकते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि गाते समय गले पर जोर न डाला जावे। आपको शिक्षा मिले या न मिले किन्तु आपको प्रत्येक अनुकूल अवसर पर गाना चाहिए। कम से कम अवसर मिलने पर भी गाने लगो। यदि आपका स्वर कर्कश और ऐसा भद्दा है कि आपके मित्रों को उसे सुनकर आरा चलने का स्वर याद आ जाता है तो भी हतोत्साह न हो। प्रत्येक गायक को आरम्भ में ऐसी ही दशा होती है। आपका स्वर चाहे जितना बुरा क्यों न हो, आपको अपने से बुरे स्वरवाले भी मिल ही जावेंगे। इस बात को स्मरण रक्खो कि सभी स्वर-शिक्षा पाने से सुधरते है। यह बात सब मानते हैं कि प्रत्येक बोलनेवाला गाना भी सीख सकता है। आप किसी प्रकार भी ऐसा समय निकाल सकते हैं जिससे दूसरों को कष्ट न हो, अथवा आप उपरोक्त प्रणाली से चाहे जब गा सकते हैं; उदाहरणार्थ, चलती हुई रेलगाड़ी में अथवा ऐसी भारी भीड़ में जहाँ शोर में आपको अपना स्वर भी सुनाई न दे आप जी भरकर जोर-जोर से बिना किसी को कष्ट दिये गा सकते हैं। इस बात को स्मरण रक्खो कि स्वर साधने के लिए गुनगुनाना भी अच्छा होता है।

एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है। वह यह है कि गायन का लाभ खाली पेट गाने से अधिक होता है। अच्छे-अच्छे गायक खाने के पश्चात् नहीं गाया करते। पेट खाली होने पर आपका स्वर स्वतन्त्र और स्पष्ट होता है। प्रत्येक समय भोजन से कुछ मिनट पूर्व गाने से भोजन अच्छा पचता है। इससे मानसिक स्थिति भी पूर्ण पाचन-क्रिया के अनुकूल बन जाती है।

जब आप अपने ऊपर अपनी शक्ति से अधिक उत्तरदायित्व को आता देखें, अथवा जब आपके मन में उदासी, चिन्ता

अथवा निराशा हो तो आप तुरन्त गाना आरम्भ कर दें। इसके अतिरिक्त और किसी बात से आप इतनी शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते। पहिले एक राग को गुनगुनावें, फिर किसी प्रसिद्ध गीत को गाने लगें। अपने मन और आत्मा को उसमें पूर्णतया लीन कर दें। फिर आप उसके प्रभाव को देखकर स्वयं ही आश्चर्यचकित हो जायँगे।

इक्कीसवाँ अध्याय

दैनिक कार्यक्रम

अब इस पुस्तक की शिक्षा का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जाता है जिस प्रकार उसका उपयोग अपनी दैनिक जीवनचर्या में करना चाहिए—

ग्रीष्म-ऋतु में प्रातःकाल ४ बजे से ५ बजे तक और सर्दियों में ५ बजे से ६ बजे तक उठकर पहिले एक गिलास ठण्डा अथवा उष्ण जल पियो और उसके थोड़ी देर पश्चात् शौच जाओ।

शौच के पश्चात् चौथे अध्याय में वर्णित चुल्लिका-ग्रन्थि को बल पहुँचाने के व्यायाम करो। उसके पश्चात् उष्ण जल पीते हुए, पाँचवें अध्याय के, मेरुदण्ड को बलिष्ठ करने के व्यायाम करो।

इन व्यायामों के पश्चात् शरीर की सूखी मालिश—मर्दन (स्नान)—करानी चाहिए और फिर यदि इच्छा हो तो ठण्डा स्नान करना चाहिए। सामान्यतः उष्ण जलपान का प्रयोग करते समय ठण्डे पानी का स्नान आवश्यक नहीं है, किन्तु शरीर-शुद्धि के लिए स्नान करने में कोई हानि भी नहीं है। स्नान समय-समय

पर भिन्न-भिन्न प्रकार का करना चाहिए। कभी-कभी पूरे स्नान के स्थान में केवल उदर-स्नान ही करना चाहिए।

प्रातःकाल के भोजन से पूर्व कुछ समय हँसने अथवा गायन में व्यतीत करो।

प्रातःकाल का भोजन हलका होना चाहिए। उसमें सन्तरे, सेब, नासपाती और अङ्गूर आदि अम्ल रसवाले फल अवश्य हों।

दिन भर अपना कार्य करते समय शरीर के ठीक आसन का सदा ध्यान रक्खो। मेरुदण्ड को सदा ही सीधा रखने का उद्योग करते रहो। बैठे अथवा खड़े हुए भी अपनी चिबुक को अन्दर, नीचे और पीछे को तथा मेरुदण्ड को यथाशक्ति अधिक से अधिक सीधा रक्खो।

सदा आशान्वित और प्रसन्न रहो, किन्तु युद्ध करने की भावना को भी बनाये रहो। आपकी इच्छा-शक्ति—निश्चय-शक्ति—अत्यन्त अधिक नहीं हो सकती।

एक भोजन के पश्चात् दूसरे भोजन में कम से कम पाँच छः घण्टों का अन्तर होना चाहिए। भोजन ख़ूब चबाकर करो। भोजन का अधिक से अधिक आनन्द लो। बिना अधिक भूख लगे भोजन मत करो।

दिन में किसी समय भी कुछ समय तक टहलने का यत्न करो। टहलने के लिए प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा होता है। प्रातःकाल समय न मिले तो सायंकाल को टहलना चाहिए। इस टहलने के समय चुल्लिका-ग्रन्थि को बल पहुँचाने का व्यायाम करते जाओ। अपने उदर-प्रदेश को फैलाकर गहरा तथा पूर्ण श्वास लेते समय चिबुक (ठोड़ी) को अन्दर, नीचे और पीछे को रक्खो।

जल स्वतन्त्रतापूर्वक पीने की आवश्यकता को भूल न जाओ। अपने पास सदा ही जल रक्खा करो, जिससे आप अपनी प्यास को शीघ्र शान्त कर सको।

प्रातःकाल या सायंकाल के पश्चात् किसी समय भी यदि सम्भव हो तो किसी प्रकार का घर से बाहर का व्यायाम करो अथवा खेल खेलो, जिससे श्वास दौड़ने के समान फूलने लगे।

अपने सायंकालीन भोजन से पूर्व भी या तो ख़ूब हँसो अथवा थोड़ा गाओ।

सायंकाल के भोजन के अन्त में भी उपरोक्त फलों का सेवन अवश्य करो। सोने से पूर्व कुछ मेरुदण्ड के व्यायाम, टहलने अथवा थोड़ा दौड़ने से अच्छा लाभ होता है।

यदि सम्भव हो तो सायंकाल के समय वायुस्नान करो।

प्रातःकाल अथवा दिन में किसी भी समय सूर्य-स्नान और वायु-स्नान को एक साथ करो। यदि सूर्य-स्नान नित्य न कर सको तो हलके रङ्ग के वस्त्र पहिनकर अपने शरीर पर सूर्य की किरणें पड़ने देने के लिए घर से बाहर धूप में टहलो।

सप्ताह में एक या दो बार साबुन लगाकर जल से स्नान किया करो।

रात्रि को इतना शीघ्र सोने का यत्न करो कि प्रातःकाल अपने उठने के समय बिना किसी बाधा के उठ सको।

——